

**TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180985

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.6 Accession No. G.H. 2090
 S53 H2
Author रामा, सत्यनारायण
Title हृदय-तरंग १९४०

This book should be returned on or before the date
last marked below.

सत्यनारायण ग्रंथमाला—सं० १

❀ श्री ❀

हृदय-तरंग

अर्थात्

स्व० कविरत्न पं० सत्यनारायण शर्मा
कविभूषण की
फुटकर कविताओं का संग्रह

संपादक—

अयोध्याप्रसाद पाठक, बी० ए०, एल-एल०, बी०

नवीन संशोधित

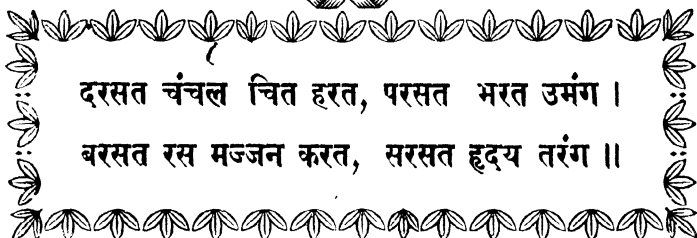
द्वितीय संस्करण

प्रकाशक—

श्री नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा

१९४० ई०

मुद्रक
जगदीशप्रसाद अग्रवाल
दी एज्युकेशनल प्रेस, आगरा ।



दरसत चंचल चित हरत, परसत भरत उमंग ।

बरसत रस मज्जन करत, सरसत हृदय तरंग ॥

निदरत करि उपहास जे, लखि यह रचना साज ।

समझि लेंइ ते यतन यह, नहिं किंचित तिन काज ॥

उपजै मति कोऊ सुहृद, मो गुन परखन-हार ।

है यह समय अगाध बहु, औ अपार संसार ॥

—भवभूति

विषयानुक्रमणिका

विनय

			पृष्ठ
१—तिहारो को पावै प्रभु पार	...	...	३
२—निरखत जित तित ही तुम व्यापक	...	...	४
३—को गुन अगम थाह तव पावै	...	...	४
४—कमलनयन भुजँगशयन	...	...	५
५—दया ऐसी कीजै भगवान्	...	...	६
६—जय जय जयति शक्ति महारानी	...	...	६
७—ॐ जयति जयति जननी	...	...	७
८—जै जै मंगलमयी भारती	...	...	७
९—जयति जयति जननी	...	...	८
१०—महावीराष्टक	...	...	१०
११—श्री जगदीश	...	...	१२

उपालम्भ

१—माधव आप सदा के कोरे	...	...	१५
२—माधव अब न अधिक तरसैये	...	...	१६
३—माधव तुमहुँ भये बेसाख	...	...	१७
४—भयो क्यों अनचाहत को संग	...	...	१७
५—मोहन अजहुँ दया उर लावौ	...	...	१८
६—मोहन कबलौ मौन गहौंगे	...	...	१८
७—अब न सतावौ	...	...	१८

			पृष्ठ
८—उठो अब सोय चुके प्रभु जागौ	...	...	२०
९—परेखो प्रेम किये को आवे	...	...	२०
१०—बस अब नहिं जाति सही	...	...	२१
११—पालागन कर जोरी	...	...	२२

स्वदेश भक्ति

१—बन्दौं मातृभूमि मन भावनि	...	...	२५
२—पूरब पच्छिम घाट चरण	...	...	२६
३—जय जय सुधि निरत लेवि	...	...	२७
४—पावन परम जहाँ की	...	...	२८
५—सब मिलि पूजिय भारत माई	...	...	३०
६—बन्दौं भारत भुवि महतारी	...	...	३१
७—जय जय भारत मातु मही	...	...	३२
८—जय जय जय स्वतंत्रते प्यारी	...	...	३२
९—देवी मनुष्यते अब वीणा मधुर बजादे	...	...	३३
१०—देश के कोमल हृदय कुमार	...	...	३३

प्रेमकली

१—मंजु मनोरम मधुर सरस	...	...	३७
२—जब ध्यान में तन्मय होत	...	...	४७
३—यह गूढ़ सुभाउ को कारन कोउ	...	...	४७
४—सुख दुख में नित एक	...	...	४८

अमरदूत

१—श्री राधावर निज जन बाधा सकल नसावन	...	...	५१

प्राकृतिक सौन्दर्य

			पृष्ठ
१—जय जय जग आश रूप ऊषे	...	...	६३
२—मृदु मंजु रसाल मनोहर मंजरी	...	...	६४
३—ऋतुराज आज कैसा प्यारा वसंत आया	...	...	६४
४—जय वसन्त रसवन्त सकल सुख सदन सुहावन	...	...	६५
५—लसैँ मधु परनी के कहूँ पुंज	...	...	६६
६—कँपत चर अचर सकल लखि याहि	...	...	७०
७—घनश्याम रस बरसाना	...	...	७३
८—बदरवा दल पुनि-पुनि धिरि आवै	...	...	७३
९—जे का पावस सरस सुहावनि ?	...	...	७४
१०—जय जग जीवन जलद नवल	...	...	७५
११—मन भामिनि दामिनि हे घनश्याम	...	...	८०
१२—नव चारु तमाल से ये घनश्याम	...	...	८३
१३—वह बेतस बेलि प्रसून सुवासित	...	...	८३
१४—अत्र पुष्पित माल औ अर्जुन को मद	...	...	८३
१५—अति ऊँचे उठे जिह शृंगनु पै	...	...	८३
१६—सकल थल विहरत हो तुम पौन	...	...	८४
१७—नव ऊँचे उठे अरविन्दनु में	...	...	८४
१८—सुख प्रद उच्च अटानि भरोखे	...	...	८४
१९—बोरत प्रेम पयोनिधि में	...	...	८५
२०—आआ लखैँ छवि शरद की	...	...	८५
२१—सुन्दर शोभित सुखद शरद	...	...	८६
२२—भर भर भर भरना भरत	...	...	८८
२३—ये गिरि सोई जहाँ मधुरी	...	...	८९
२४—यहि बेतस वल्लरी पै खग बैठि	...	...	८९
२५—इन खोहनि में दल रीछनि को	...	...	८९

२६—ये जनस्थान सीमा महान	...	...	६०
२७—विकसों नव वेगरी घुंङिनु सों	...	...	६०

श्री ब्रजभाषा

१—भुवन विदित यह यदपि चारु	...	...	६३

हास्य

१—सिन्धु सुता इक दिना सिधाई	...	...	१०१
२—भज कलदारं भज कलदारं	...	...	१०२

प्रशस्ति

१—श्रीरामतीर्थाष्टक	...	...	१०७
२—श्रीगाँधी स्तव	...	...	१०८
३—श्री रवीन्द्र वन्दना	...	...	११२
४—श्री तिलक वन्दना	...	...	११३
५—श्री गोखले	...	...	११४
६—श्री सरोजनी पट्पदी	...	...	११६
७—लाला लाजपतिराय	...	...	११८

कविता कुंज

१—श्रीकृष्ण जन्माष्टमी	...	...	१२१
२—गोवर्धन	...	...	१२३
३—क्यों मन ऐसो होत अधीर	...	...	१२५
४—विमल बीज सों अंकुर	...	...	१२६
५—समुदित जिनके होत	...	...	१२६
६—मृदुल मृदुल जो मंजु फुहारें	...	...	१२७
७—जो श्रुति सुपथ प्रदर्शक	...	...	१२७
८—सब रस गहन प्रयाग युक्त	...	...	१२७

			पृष्ठ
६—करै उपरी मेल सबनसों	...	...	१२८
१०—नैन विकराल लाल रसना	...	...	१२८
११—फूल रही केतकी कतार	...	...	१२८
१२—भूमत ज्यों मतवारो मतंग	...	...	१२६
१३—रे अलि एतो संदेश कहो	...	...	१२६
१४—पौन की सनक घन सघन ठनक	...	...	१३०
१५—बहुधा प्रिय वृत्ति विनै मधुरी	...	...	१३०
१६—नहि तेजधारी सहत कबहू	...	...	१३०

रूपान्तर

१—वही पड़ौसी तेरा	...	...	१३३
२—अस मन मारयो कहूँ रहै काँऊ जन	...	...	१३४
३—कहौ मोहि समुझाय सरित तुम सुन्दर	...	...	१३५
४—शशिमुखि भवन गवन अब कीजै	...	...	१३६
५—महदय प्यारी	...	...	१३६
६—तव कीर्त्ति मरालिनि सिन्धुहि जाय	...	...	१३७
७—भगवन् मेरा देश जगाना	...	...	१३७
८—विलसहि नित सुकृत सन्त	...	...	१३८

द्वितीय खण्ड

विषयानुक्रमणिका

मंगलाचरण

			पृष्ठ
१—जय-जय विपति विभंजन माधव	...	...	१४१
२—सकल जगत की पूज्य आशप्रद	...	...	१४२
३—परम पिशाची प्रकृति हिरणकश्यप	...	...	१४३
४—मंगलकरन कलिमल को हरनहार	...	...	१४३
५—अव्यक्त अद्भुत अजेय अनन्त नाम	...	...	१४३
६—मंगलमय सुनिये इतनी विनय हमारी	...	...	१४५
७—हित करिके नेह निभैयो	...	...	१४७
८—अहो श्यामसुन्दर कहँ ? प्यारे !	...	...	१४७
९—नमस्ते धीरूपे अगति गति रूपे	...	...	१४९
१०—जटा अरण्य तें भरी सुगंग वारि	...	...	१५५
११—पावन परम तव महिमा को पारावार	...	...	१५५
१२—देह तवमधि देव ! देखौं	...	...	१६६

देशदशा

१—हमारा प्यारा हिन्दुस्तान	...	...	१७५
२—कौने सुनाउँ अपनो दुख हाय जाई	...	...	१७५
३—लीजिये सुधि मेरी	...	...	१८२
४—जय-जय अनादि अनमधि अनन्त	...	...	१८३
५—लगी दिन रैन है चिन्ता	...	...	१८७

चेतावनी

			पृष्ठ
१—करहु मन मातृभूमि अनुराग	...	...	१६१
२—सुनहु सुनहु मन लगाय	...	...	१६१
३—क्या करि कृपा प्रेमपूरित हो	...	...	१६३
४—उठौ-उठौ हो भारत सांझ ना	...	...	१६६
५—मन मूरख क्यों नहि मानै	...	...	१६७
६—पियारी तेरे गौने के दिन रहे चार	...	...	१६७

समस्या-पूर्ति

१—सुखकारक दारक दारिद के	...	...	२०१
२—माखन चुरायो दधि लूटि लूटि खायो		...	२०१
३—बूड़त राखि लयो गज कों	...	...	२०२
४—सह ग्वालन के मिलि के		...	२०५
५—रीति की बात न प्रीति की बात	...	...	२०५
६—दासी सबै जु हरी पदकंज की	...	...	२०५
७—कोऊ करो बदनाम जु मोहि	...	...	२०६
८—चित्त फँस्यो मन मोहन में	...	...	२०६
९—कैसे करें मग चालत में	...	...	२०७
१०—रानी सबै तुम लोकन की	...	...	२०७
११—जायँ कहाँ तोहि दूँ प्रिये	...	...	२०७
१२—निज स्वारथ को बस ध्यान जिन्हें	...	...	२०८

पद

१—जगत में को ऐसो गुनवान	...		२११
२—हे घन श्याम कहाँ घनश्याम	...	...	२११
३—सँवलिया परत न तो बिन चैन	...	...	२१२

४—आइये सुजन पियारे	...	...	२१२
५—करि मन टका राम को ध्यान	...		२१३
६—जगत में को साँचो श्रीमान		...	२१३

दोहे

१—आओ बैठो हँसो प्रिय	...	...	२१७
२—घन गरजत तरजत परम	...	...	२१७
३—श्री राधामाधव विलास—			
श्री राधापति माधव	...	...	२१८

रूपान्तर

१—चर्पट पंजरी—			
भज गोविन्दहिं भज गोविन्दहिं			२२७
२—दिलीप कथा (रघुवंश से)—			
बानी अर्थ समान युक्त जो	...	...	२३३
३—मुद्राराक्षस—			
को यह अति बड़ भागिति	...	...	२५७
४—ईनोक आरडित	...	...	२६१
५—होरेशस—			
जवै भुक्ति हेमंतरात	...	...	२६७



स्वर्गीय पं० सत्यनारायणजी 'कविरत्न'

मॉडर्न प्रेस, आगरा ।

* श्री *

दो शब्द

किसी कवि की कविता समझने में, उसके जीवन तथा जीवन सम्बन्धित घटनाओं का नकशा सामने होने से, बड़ी सहायता मिलती है। अंगरेजी कवि स्काट, मिल्टन, बाइरन, वर्ड्सवर्थ इत्यादि तथा उर्दू कवि मीर, इन्शा, गालिब वगैरह की विस्तृत जीवनी देखने से उनकी कविता के सूक्ष्मभाव बड़ी सुगमता से समझ में आ जाते हैं। इसी प्रकार कविरत्न पं० सत्यनारायण की जीवनी तथा जीवन सम्बन्धित घटनाओं को जान लेने पर, उनकी कविता का समझना आसान हो जाता है।

पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने बड़े परिश्रम से कविरत्न सत्यनारायण की जीवनी लिखकर प्रकाशित करा दी है। यह महत्वपूर्ण काम तो होगया, परन्तु यहाँ कविता से सम्बन्धित जीवन-घटनाओं का कुछ उल्लेख करना भी आवश्यक प्रतीत हुआ, इसलिये यह काम मेरे सुपुर्द किया गया है।

पं० सत्यनारायणजी से मेरा परिचय सन १९०३ ई० में हुआ। मैं अंगरेजी मिडिल पास कर चुका था और वे एन्ट्रेंस में पढ़ते थे—एक कक्षा का फर्क था। पंडितजी ने तब से अपने मरण-काल पर्यन्त खूब “हित करके नेह” निवाहा। अफसोस यह रहा कि अन्त में वे बिना कुछ कहे सुने ही चले गये।

यह वह ज़माना था जब अन्य नगरों की भाँति आगरे में भी आर्यसमाज तथा सनातनधर्म सभाओं के अखाड़ों की छेड़छाड़ रहा करती थी। खंडन मंडन ज़ोरों पर था। स्वामी हंसस्वरूप, बाबा आलाराम सागर, पं० दीनदयालु इत्यादि समय-समय पर

पधारा करते थे । भजनीकों के मोरचे रूप जाते थे । पं० सत्यनारायणजी की ड्यूटी सी थी कि वे हर एक सभा में मंगलाचरण और कुछ कविता बनाकर सुनाया करें ।

“हित करिके नेह निभैयो घटघट के अंतरजामी”

तर्भा का भजन है । स्वामी हंसस्वरूप का व्याख्यान—

‘जटा कटाहसंभ्रम भ्रमत्रिलिप निर्भरी’

से प्रारंभ होता था । फरुखाबादी गजाधरप्रसाद “नवीन” कवि अपना समश्लोकी शिवताण्डव स्तोत्र बनाकर यहाँ लाये थे और वे डाढ़ी फटकार फटकार कर—

“भवानि के अनूप नैन सेन हाव भाव में”

बड़ी खूबी से सुनाया करते थे । समश्लोकी अनुवादों की धूम थी । पं० सत्यनारायणजी का शिवताण्डव स्तोत्र, चर्पट पंजरी, और रघुवंश का समश्लोकी अनुवाद तभी का है ।

सैन्ट जॉन्स स्कूल में बाइबिल-शिक्षा अनिवार्य थी—परीक्षा भी हुआ करती थी । इस्तहान में इंजील के एक प्रश्न में कुछ वाक्यों की व्याख्या कराई गई जिनमें एक यह था—

“जो क्रैमर का है वह क्रैमर को दो, और जो ईश्वर का है वह ईश्वर को दो ।”

पं० सत्यनारायणजी ने, धर्मसभाओं से संबंध रखने के कारण, इस एक ही वाक्य की विशद व्याख्या करके पूरी कापी भर दी । यह देख कर श्री टामस साहब हैडमास्टर को कहना पड़ा कि सत्यनारायण, तुम तो एक नया बाइबिल बना डालो । उन पर ईसाई मिशनरी स्कूल का प्रभाव पड़ा । इसीकी छाया नीचे लिखी पंक्तियों में साफ झलक रही है—

भेज्यो कहूँ प्रतिनिधी प्रियपुत्र आप,
मेटे जहाँ जनन के त्रयताप पाप ।

हैं भक्तप्रेम-बस भारत भूमि भारे.
देवेश आपुहिँ यहाँ कृपया पधारे ॥

मिढ़ाकुर के देहाती हिन्दी मंदरसे में “कवि कुन्दनलाल मिढ़ा-
कुरवारो” ने सत्यनारायण के हृदय-क्षेत्र में जो कविता बेल बो दी
थी वही काल-क्रम से अंकुरित होकर अपने पान फैलाने लगी थी।

“राजपूत” प्रेम व स्वदेशवान्धव (मासिक पत्र) के मालिक
कुँ० हनुमन्तसिंह रघुवंशी बहुतों को हिन्दी लिखने-पढ़ने का
अभ्यास करा गये। उस समय “राजपूत” का जोर था, “चित्तौर
चातकी” बनारस में गंगाजी में डुवाई जा चुकी थी। ठाकुर सूर्य-
कुमार वर्मा उन दिनों यहीं थे। १९०५ ई० से स्वदेशी आन्दोलन
जड़ पकड़ने लगा था।

देश सेवा चारु उन्नति नागरी सुप्रचार।

... ..

निज धर्म जानि “स्वदेश बांधव” को भयौ अवतार।

“स्वदेश बांधव” के लिए उपयुक्त मोटो बनाकर उसमें कविता
देना पंडित सत्यनारायण का “धर्म” होगया। उस ज़माने में जितनी
कविताएँ रची गयीं सबही में स्वदेश-प्रेम की झलक पाई जाती है।
उधर बंगाल से—

‘सुजलां सुफलां मलयज शीतलां शम्य श्यामलां मातरम्’
की ध्वनि उठी तो इधर—

‘बन्दौ मातृभूमि मनभाविनि’ की आवाज़ गूँजने लगी। हरेक
जलसे में पं० सत्यनारायणजी मातृभूमि का राग अलापते सुनाई
पड़ते थे।

चतुर्वेदी श्री रामनारायण मिश्र बी० ए० उन दिनों आगरे में
आबकारी इन्स्पेक्टर थे। चतुर्वेदी द्वारिकाप्रसादजी प्रयाग से “श्री
राघवेन्द्र” निकाल रहे थे। पं० श्रीधर पाठक का—

“स्वर्ग और कश्मीर दोउन में को है सुन्दर ।
को उपमा को भौन रूप को कौन समुन्दर” ॥

हिन्दी संसार को मथ रहा था । इधर पंडित मत्यनारायणजी एन्ट्रेन्स पास करके एफ० ए० में पढ़ रहे थे—हौमले बड़े हुए थे । स्वामी रामतीर्थ से भेंट हो चुकी थी—भारत-धर्म-महामंडल के मंच से प्रयाग में कविता पढ़ चुके थे, चतुर्वेदी देवीप्रसादजी एम० ए० फीरोजावादी कवि “बांधा” और “ठाकुर” की कविताएँ सुनाते, उधर मिश्रजी अपने मधुर कंठ से कविता पाठ करते । घंटो बैठक रहती । काव्यमय वातावरण का प्रभाव जमता गया । तबियत में कविता थी ही । पं० मत्यनारायण की कविता निम्बरती गयी ।

प्रसिद्ध कवि पं० अक्षयवट मिश्र ने संस्कृत दोहों में “राधा मायव विलास” प्रकाशित कराया । द्विवेदीजी ने बड़ी प्रशंसा की । पं० मत्यनारायण ने पुस्तक पाते ही हिन्दी दोहों में उसका अनुवाद करके अक्षयवट जी के पास भेज दिया जो उन्हें बहुत पसन्द आया ।

भव-बाधागाधा हरन राधा राधापीय ।
दुख दारिद्र्य दगि विस्तरहु मंगल मेर हीय ॥

... ..

अरे कान्ह दधि मथनिया क्यों डारत कर, तात ?
चैटी जां जामें गिरीं तिनहि निकारन, मात ॥

... ..

कंजन खंजन मिरग भगव मद गंजन छवि दैन ।
लसत मन मद ऐन से राधा तेरे नैन ॥

... ..

अरी मुरलिया तैं करथौ कौन कठिन तप, बीर ।
जो पीवत हरि अधर रस नामत भव भय भीर ॥

... ..

का सखि तहँ फूले न वन करत न कोकिल कूक ।
नहि आवन पिय हेतु का हांत हृदय में हूक ॥

... ..

कहुरे कागा परम प्रिय प्रिय आवन की बात ।
तिन आये हौं देउंगी तोहि दूध अरु भात ॥

.... ..

जैसे-जैसे अँगरेजी कवियों को सरस कविताएँ देखने में आईं
वैसे-वैसे पं० मत्स्यनारायणजी की कविता में निग्वार बढ़ता गया ।
टेनीसन का 'ईनोक आर्डन' एफ० ए० कोर्स में था । पंडित जी की
मदा से आदत थी कि पढ़ते-पढ़ाते यदि किसी किताब की कोई
बात मन में चुभी तो उसे कविता बनाकर वहीं पेन्सिल से अङ्कित
कर लिया । बहुधा पुस्तकें इसी प्रकार रंगी हुई हैं । रघुवंश का
अनुवाद इसी तरह हुआ ।

पूजी तवै धनु महीप बाला
चढ़ाय के अक्षत गंध माला ।
चुग्याय बच्छा नृप बाँधि लीन्हों
गो कों यशस्वी वन छाँड़ि दीन्हों ॥
खुजाइ, देके तृण कौर प्यारे
बिड़ारि ता माछर डाँस भारे ।
बेगोक स्वच्छन्द जु ढील दीनी
भूपाल है तत्पर सेव कीनी ॥

—रघुवंश

जिमि कोउ जाइ तड़ाग बुड़ावति गागर गोरी ।
मन लागी नित भरनहार रसिया सों डोरी ॥
मुखलों सो भरिजात बहत जल बबलत ता धुनि ।
प्रिय मनेह बस पर तिय सुनत न सकल सबद सुनि ॥

.... ..

करन प्रार्थना लग्यो हृदय भरि प्रेम रसायन ।

द्वैत भाव तजि जहाँ मिलत नित नर नागयन ॥

—ट्रेनीसन

चतुर्वेदी श्री रामनारायण मिश्र काश्मीर सुखमा देखकर बोले कि पाठकजी ने रोला छन्द की कविता का स्वात्मा कर दिया । पं० मत्त्यनारायणजी ने वसंत-स्वागत और पावस-प्रमोद उसी समय रोला-छन्द में लिखे । कविवर सरोज का कहना है कि नये कवियों के लिये ऐसा सुन्दर रोला-छन्द लिखना सरल काम नहीं है । आचार्य मशहोरप्रसाद द्विवेदी ने इन कविताओं की बड़ी प्रशंसा की थी और "सरस्वती" में उन्हें प्रकाशित भी किया था ।

लखनऊ में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन था । बाबू श्यामसुन्दरदास तथा मिश्र बंधुओं का दौर-दौरा था । उर्दू-प्रधान-क्षेत्र में ग्वड़ीबोली के आगे बेचारी ब्रजभाषा को भला कौन पँछता । मनोनीत सभापति पं० श्रीधर पाठक को ग्वड़ी बोली वाले अपनी ओर खींच रहे थे । पं० मत्त्यनारायणजी आम रंग पीड़ित थे—रातो नहीं सो पाते थे । पाठकजी का आगरे से घनिष्ठ सम्बन्ध था । बुलावा आया जिसने पं० मत्त्यनारायणजी को बड़े असमंजस में डाल दिया । नियत तिथि से तीन दिन पहिले चलने का निश्चय हुआ । पंडित जी से कहा गया कि लखनऊ में ब्रजभाषा का डंका बजना चाहिये । रातोंरात "ब्रजभाषा" शीर्षक कविता लिखी गयी और सबेरे पुरजों पर से पढ़ी गयी । दिन भर में कम्पोज होकर छापी गयी । लखनऊ पहुँच कर मत्त्यनारायणजी सीधे पाठकजी से मिले । पूछा—“कुछ बनाकर भी लाये हो”—“ब्रजभाषा” सुनायी गयी । वह दृश्य आँखों में है, पाठकजी सुनते और भूमते जाते थे—“भई बाह, राम पंचाध्यायी का आनन्द आ रहा है” ।

दूसरे दिन सभापतिजी ने पं० मत्त्यनारायणजी को मंच पर से बुलाया—“ब्रजभाषा” पढ़वाई गयी ।

वरनन को करि सकत भला तिह भापा कोटा ।

मचलि मचलि जामें माँगी हरि माखन गोटी ॥

राय देवीप्रसाद "पूर्ण" ने पीठ ठोकी । बाबू प्रयागनारायणजी मार्गव पं० सत्यनारायणजी को मोटर में बिठाकर अपने नवल-किशोर प्रेस में ले गये—लखनऊ के सुप्रसिद्ध फोटोग्राफर सो० मल० ने फोटो खींचा जो अब तक छापा जाता है । गढ़ जीत राजी खुशी घर लौटे । आगे आकर फिर बोमार पड़ गया । भरतपुर अपना इलाज कराने जाते थे, वहीं पर कविवर मोमनाथ चतुर्वेदी का माधव विनोद देखा, और उसी के ढंग से भवभूति कृत मालती-माधव का सुन्दर गद्य पद्यात्मक अनुवाद किया । उत्तर रामचरित्र नाटक पहले प्रकाशित हो चुका था । मालती माधव का प्रकाशन कविरत्न जी के जीवन-काल में प्रारम्भ हो गया था परन्तु समाप्त नहीं हो पाया था । कास रोग में जब रात को गले में कफ अटकता और आस फूलता तो सत्यनारायणजी कहा करते "कवि की जिह्वा पर सरस्वती का निवास होता है—जो बात मुँह से निकल गई वह पूरी होकर रहती है । उत्तर रामचरित्र में श्रीराम-चन्द्रजी को क्या रुलाया, सब दुख अपने ऊपर ले लिया है—

करत 'घरघर' घर घूमत भाग देत अपार—

....

जरत करत पै भसम ना दौं लागी तन माँहि—

... ..

सो मैं प्रत्यक्ष भोग रहा हूँ ।”

बस अब नहीं जाति सही

विपुल वेदना विविध भाँति जो तन मन व्यापि रही

कबलौं सहें अवधि सहिवे की कलु तो निश्चित कीजै

दीनबन्धु यह दान दशा लखि क्यों नहीं हृदय पसीजै

उसी समय लिखी गई थी ।

पं० सत्यनारायणजी में एक खास बात यह भी थी कि वे अपनी कविता सुनाने में किसी समय भी तकल्लुक नहीं करते थे। और जो बात उन्हें मुझाई जाती — या उनकी कविता में जो 'इसलाह' की जाती, उस पर न तो वे चिढ़ते थे और न बुरा मानते थे। पं० बदरीनाथ भट्ट ने मालती माधव का प्रारम्भिक नान्दी पाठ मनहरण से ध्रुपद करा दिया था।

उपर्युक्त घटनाएँ केवल इसलिए लिखी गयी हैं जिससे ज्ञात हो जाय कि सत्यनारायणजी की कविता का विकास क्रमशः किम प्रकार होता गया और उन पर परिस्थिति का प्रभाव कैसे पड़ता गया। वे परिपक्वता प्राप्त करके न जाने और क्या क्या लिखते परन्तु दुर्भाग्यवश वह समय आया ही नहीं।

"हृदय तरंग" अब की बार दो खंडों में प्रकाशित हो रही है। प्रथम खण्ड में जो कविताएँ रक्खी हैं वे छात्रोपयोगी होने के कारण एक स्थान पर ले आई गयी हैं—शेष कविताएँ दूसरे खण्ड में रक्खी गई हैं। प्रथम संस्करण में सत्यनारायणजी की अन्य प्रकाशित पुस्तकों से कोई उद्धरण नहीं लिये गये थे परन्तु इस संस्करण में अन्य पुस्तकों से भी कुछ अवतरण दे दिये गये हैं जिससे पाठकों को उन कविताओं का भी कुछ नमूना मिल जाय। जहाँ तक पता चला है प्रत्येक कविता के नीचे उसकी रचना-तिथि भी दे दी गयी है, जिससे पाठक जान सकें कि कौनसी कविता कवि ने किस समय रची। आशा है यह परिवर्द्धित संस्करण साहित्य-प्रेमियों को रुचिकर प्रतीत होगा।

आगरा
विजया दशमी
सं० १९६७ वि०

अयोध्याप्रसाद पाठक

प्रस्तावना

स्व० सत्यनारायणजी ने पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को एक पत्र में लिखा था—“आपके पत्र से ज्ञात—विश्वास—हुआ कि ‘हृदय-तरङ्ग’ इस संसार में उठ सकेगी—यह इस ग्रामीण हृदय का सच्चा नैसर्गिक उद्गार है”.....।”—‘हृदय तरङ्ग’ एक बार तब प्रकाशित हुई और उसका गूँव स्वागत हुआ—और दूसरी बार अब उसका संस्करण निकाला जा रहा है। आज हम उस काल से दूर हट आये हैं। हिन्दी-साहित्य-संसार अपनी द्रुतगति से लगभग दो दशाब्दियाँ पार कर चुका है। इस अवकाश में हिन्दी में कई साहित्यिक क्रान्तियाँ हो गई हैं। नये विचारों के प्रादुर्भाव के साथ नवीन काव्य में सौन्दर्य की कल्पना विराट और विशद होती जा रही है। नागरिक-रुचि में एक महान संस्कार होता दिखाई पड़ने लगा है। सौन्दर्य की अमूर्त, अपूर्व, प्राकृत किन्तु सरस कल्पना में अनुभूति के प्राण डाले जा रहे हैं। साहित्य का डाँड अब विष्कूल नये खेवों के हाथ है। न जानें किस किनारे लगा दें।

सत्यनारायणजी का सहज और भोला रूप अब हमें देखने को नहीं मिलता, न उनकी कविता के पढ़ने के सरस ढंग का अमृत ही हमारे कानों को मिलता है। इन सब बाहरी प्रभावों का एक दम अभाव हो गया है। फिर भी ‘हृदय-तरङ्ग’ की

आवश्यकता समझी जा रही है। और अब हम उनके 'व्यक्तित्व' से अधिक 'कवित्व' को जानना चाहते हैं।

आज कुछ लोग कहते हैं "सत्यनारायण में 'कुछ' था नहीं और 'कुछ' है नहीं; उन्हें उनके मित्रों ने इतना बढ़ा दिया है।" हो सकता है—जो व्यक्ति पितृ-विहीन, एक साधु की कुटिया में प्रकट हो, जो माता को छोड़ दूसरा कोई सम्बन्ध लेकर ही संसार में न आया हो, और वहाँ पला हो जहाँ आत्म-विज्ञापन के स्थान पर नम्रता, आत्म-आग्रह के स्थान पर भोलापन और प्रवंचना के स्थान पर सहज पवित्रता हो, जो सचमुच अपनी टेक—

'कारो 'सत्य' गाम को वासी कहा तकल्लुफ जानें।'

की साक्षान् प्रतिमा हो, जिसकी दुपल्ली टोपी (उन दिनों की, जब गान्धी कैप फैशन में नहीं आई थी) और देहाती बगलबन्दी की छवि में थोड़ा भी हृदय-स्पर्शी ओज न हो, जिसके मुख की रूप रेखायें चर्मचलुओं के लिए शुष्क और नीरस हों उसके मित्र उस ग्रामीण को इतना बढ़ा क्यों करना चाहेंगे ? उसका स्वभाव मोहक हो सकता है, उसका आन्तरिक गुण आकर्षक हो सकता है, उसके स्वर में मिठास और आँखों में मृगछाँनों की-सी कोमलता और भोलापन हो सकता है, पर इन सबके लिए केवल कविरत्न सत्यनारायण को ही उनके 'मित्रों' ने क्यों चुना ? यह एक प्रश्न है। जीवन में अन्तर और बाह्य दोनों की साथ-साथ सृष्टि होती है, सत्यनारायणजी के उस रूखे बाह्य में सरस अन्तर की—'कवि' की जगमगाहट थी। उसी 'कवि' ने अनेकों को आकृष्ट कर लिया; उसी 'कवि' पर लोग फिदा होगये।

सत्यनारायण का 'कवि' ग्राम्य सुपमा लेकर आया। ब्रजभाषा के अन्तिम खेवे के कवियों में भारतेन्दुजी से लेकर सत्यनारायणजी

तक भाषा की भी उतनी सहजता नहीं रही थी, भाव और विषय तो सर्वथा शहरी मनोवृत्ति और चिकने विलास के परिणाम थे। खड़ी बोली का जागरण ब्रजभाषा के बल और जीवन का शोषण करता जा रहा था। यद्यपि यह कहा जाता था कि कवित ब्रजभाषा में ही अच्छी हो सकती है, 'ब्रजभाषा-सी पै सुठि लौन कहाँ ?' यह सब कहा जाता था, पर खड़ी बोली में कविता के प्रयोग भी भारतेन्दुजी से ही आरम्भ होगये थे। उन्होंने कई गीत खड़ी बोली में लिखे भी थे। खड़ी बोली बोलचाल की भाषा हो चली थी, गद्य तो उसी के हिस्से था ही। यह सब ब्रजभाषा के पक्ष में घातक सिद्ध हो रहा था। जनाभिरुचि की वेद्युत्-तरङ्ग से रहित हो जाने पर भाषा का जीवन-स्नेह मन्द पड़ जाता है। समाचार-पत्रों के युग ने खड़ीबोली में उस वेद्युत्तरंग का सम्पर्क कर दिया। उस संधि-स्थल पर दोनों भाषाओं में समझौता हुआ; भारतेन्दुजी और उनके खेबे के साहित्यिकों ने कहा—गद्य खड़ी बोली में, पद्य ब्रजभाषा में। व्यवसायात्मिकावृत्ति की पोषक खड़ी बोली बनी, रागात्मकवृत्ति ही ब्रजभाषा।

किन्तु यह समझौता अधिक काल तक स्थिर न रह सका। साहित्यिकों का मानस द्विवेदीजी तक आते-आते खड़ी बोली से अभिभूत हो उठा। उधर खड़ी बोली चेतन हाथों में पड़ी थी—उम्पादकों और लेखकों के हाथ में। उन लोगों के हाथ में जिन्हें नैरंतर विकास, परिमार्जन और परिशोधन का काम था, जो प्रपने अस्तित्व को सार्थक बनाये रखने के लिए उपर्युक्त बातों पर ध्यान रखते थे, तथा जिन्हें अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए अपनी कृतियों को अधिकाधिक नवोन्मेष से युक्त, स-ओज, जीवन-प्रद तथा सुरुचिग्राही और आकर्षक करने को उत्सुक

और उन्मुख रहना पड़ता था—वे मनोरागों का भी आदर किये बिना कैसे रह सकते थे ? इतनी लेखनियाँ चलीं, प्रतिदिन पृष्ठ पर पृष्ठ पत्रों के भरे जाने लगे—और ये सब खड़ी बोली में। खड़ी बोली चमक उठी, सजीव हो उठी और मधुर भी हुई। ब्रजभाषा केवल कवियों के हाथों में रही। मनोरागों का व्यवसाय केवल मनोरञ्जन के लिए करने वाले व्यक्ति—कवि गिनती में थोड़े रह गये। अधिकांश इस युग में हरिश्चंद्र ही की भाँति दोनों कर्म करने वाले हुए : कवि भी और लेखक भी। एक ही व्यक्ति का लेखक खड़ी बोली का, और कवि ब्रजभाषा का हुआ। इस संयोग ने भी ब्रजभाषा का जीवनहीन बना दिया, क्योंकि वह व्यक्ति दोनों में से एक दूसरी को रस देता था, पर जैसे स्याही सोखता स्याही की तरल सरसता को चूस लेता है, वैसे ही खड़ीबोली ब्रजभाषा में कलम की तरह लहलहाने लगी। यह उस पूर्व के समझौते को तोड़ने की तैयारी थी। ब्रजभाषा के मनोराग व्यवसायी युगधर्म से अलिप्त अपने पूर्व वैभव के मद में मस्त रहे—और उक्ति-आवृत्ति में, रस और अलङ्कार के चमत्कार में कवि-कर्म की समाप्ति समझ कर जहाँ के तहाँ रहे। इसी समय श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय भी प्रियप्रवास लेकर उठे और ब्रजभाषा को यह कह कर ललकारा कि 'सुठि लौना पन' अथवा सरसता और मधुरता किसी की वपौती नहीं। प्रियप्रवास की भूमिका ने खड़ी बोली को एक यह चेतना दी कि चेष्टा करने पर खड़ी बोली भी मधुर हो सकती है। ब्रजभाषा काव्य के विषय का पल्ला थामे हुए साथ ही ब्रजभाषा की ऊपरी खुशामद करते हुए उपाध्यायजी ने उसे एक लात जमा दी—और ब्रजभाषा को अचकचाते देख लोग कहने लगे—ठीक है, सही ब्रजभाषा में ही विशेष माधुरी और चसक, पर गद्य और पद्य की भाषा

भिन्न क्यों हो ? जिसमें बोलें उसी में काव्य होना चाहिये । वे रुके नहीं, उन्होंने खड़ीबोली के 'ऊजड़ गाँव' बसाये, 'भारत-भारती' की गुहार मचायी—समझौता टूट गया । ब्रजभाषा अपने काव्य के एकछत्र आधिपत्य से च्युत कर दी गयी । फिर ब्रजभाषा में वह सजीवता, और बल कहाँ मिलता ! कवि नये-नये उत्कर्ष देख रहा था—राष्ट्र, देश और जाति में करवट बदलने की सी चेष्टा दिखायी पड़ रही थी । उस काल का कवि कभी अँग्रेजी शासन की प्रशंसा करता, कभी बुराई करता, कभी राष्ट्रीय महा-सभा की प्रशस्ति गाता—दैन्य और दुःख से बचने के लिये कुछ खीजता-सा पर बहुत ही अकाव्यात्मक सामग्री लेकर । उस कवि पर वह मौलिकता भी नहीं थी—कवि अधिकांश तुलबन्द होगया था ।

उस समय सत्यनारायण में नगर से दूर क्षितिज की उपा-भिल्लमिल नीहारिका में ग्राम के अबोध हृदय-स्रोत से अनायास ही निःसृत हो काव्य-धारा अपनी उज्ज्वलता और सरसता से प्रवाहित होने लगी—इस कवि की वाणी से एक बार ब्रजभाषा ने अपनी अन्तिम करुण पुकार इस प्रकार गुहराई—और इस प्रकार शायद ही किसी भाषा की पुकार उसके हृदय के साथ रखी गयी होगी—शायद ही किसी कवि ने इतनी करुणा और इतनी शक्ति अपनी भाषा की वकालत में रखी होगी:—

क्यों जासों मन फिरयो कृपा करि कलुक जतावौ ।
वृथा आतमा या ब्रजभाषा की न सतावौ ॥
जिनके तुम बस परे अहहिं ते सकल विमाता ।
ब्रजभाषा ही शुद्ध संस्कृत साँची माता ॥
मातृ-हृदय को प्रेम मातृ-हृद ही में आवै ।
ताको पावन स्वाद विमाता कबहुँ न पावै ॥

टपकावति प्रेमाश्रु पुलकि तन पूत प्रेम सों ।
भरि-भरि देखत नैन तुमहिं जो सत्य नेम सों ॥

× × × ×

काज न जब कछु करत सिथिलता तन में व्यापत ।
यही सोचि जननी ब्रजभापा निसि-दिन कांपत ॥
सुत-सेवा-हित तामु रुचिर रुचि रहत सदा हीं ।
जनमे पूत कपूत कुमाता माता नाहीं !!

कितनी प्रबल, मर्म को छू देने वाली—अभिभूत कर लेने वाली इस काव्य की पंक्तियाँ हैं—वात्सल्य-करुणा का ऐसा रूप तो कोई परित्यक्ता यशोदा अथवा कौशल्या का भी नहीं रख सका । सत्यनारायण के हृदय में प्रेमानुभूति की ठेस लगी थी, वहीं उनके हृदय के टुकड़े-टुकड़े अश्रु भर-भर भरने लगे थे—किसी की चाह-सी करुणा उनके उस 'दिले बेजार' में सदा बैठी रही—और जब-जब उस चकनाचूर अनुभूति का कवि ने जोड़ कर जीवन देना चाहा कि वह बन-बन बिखर पड़ी और खड़ी हो ही नहीं सकी ।

कवि ने सन्तोष के लिए कहा तो कि:—

गोपनीय रस रहै पुरातन प्रथा भली है ।

याही सौं अधखिली रही यह प्रेम कली है ॥

पर यह अधखिली प्रेम कली अधखिली क्यों रहे ? हम तो पुरातन प्रथा के हामी नहीं—पर कवि को कुछ चारा नहीं, वह असमर्थ था । वह अपने छप्पय के घनीभूत अभाव की करुणा को क्या करे, जिसने उसके प्राण लिये और उसकी प्रेम-कली को अर्ध स्फुटित ही मसल दिया और जब काव्यानुभूति पूर्णता को पहुँचती कि प्रकाश हटा लिया.....

न सही वह, उसकी जो अन्तः-सम्पत्ति थी, उसी पर उस का भरोसा रहा। और पूर्ण परिपाक तक न पहुँचती हुई भी उसकी कविता शाश्वत महाकवित्व की चिनगारी और विद्युत् से स्पर्शित है। उस कविता का कुछ अंश 'हृदय-तरंग' में संगृहीत हुआ है।

जिस समय 'हृदय-तरंग' प्रकाशित हुई थी विविध विद्वानों और कवियों ने उसकी प्रशंसा की थी।

यथार्थ में कविवर सत्यनारायण ब्रजभाषा में सामयिकता लाने के प्रयत्न में शुरू से ही रहे हैं। भाव में ही नहीं, उनके पद्यों के विषय और वर्णन शैली में भी सामयिकता पाई जाती है। 'भ्रमर-दूत' में उनका यह यत्न पूरा सफल होता, यदि वह इतने शीघ्र लोकान्तरित न हो जाते। इसमें यशोदा ने जो सन्देश भेजे हैं उसके वर्ण-वर्ण और अक्षर-अक्षर में स्वदेश-प्रेम और जाति-हितैषिता टपक रही है। इसको पढ़ते समय ऐसा जान पड़ता है मानो शोक-दुःख-जर्जरा स्वयं भारतमाता ही अपने हृदय का उद्गार निकाल रही हो।

बाबू श्यामसुन्दरदासजी का कहना है—“कविरत्नजी ब्रज-मंडल के रहने वाले, ब्रजपति के अनन्य भक्त, बड़े ही रमिक और सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। उनकी रचनाओं में ब्रज की माधुरी लबालब भरी है। स्वदेशानुराग की सच्ची झलक दिखलाने वाले थोड़े कवियों में इनकी गणना होगी।” बाबूजी की वाणी फली।

सत्यनारायणजी ने राष्ट्रीय कविताएँ जैसी भावपूर्ण, जोशीली और मधुर रची हैं, वैसी हमारी तुच्छ सम्मति में, अब तक तो नहीं बनीं, आगे की राम जानें।

उनकी वाग्देवी भारत-भूमि को नहीं भूली। छोटे-बड़े सभी काव्यों में हमें मातृभूमि का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष उल्लेख मिल

जाता है हिन्दी में राष्ट्रीयता का ऐसा जागरण दुर्लभ ही है, ब्रज-भाषा में तो और भी अधिक। यह कवि में नवोन्मेष की भाँति नवजीवन और नव-स्फूर्ति बढ़ाने वाला सिद्ध हुआ है।

“पावन परम जहाँ की मंजुल महात्म्य-धारा” के संगीतात्मक स्वरों में मातृ-भूमि का जो विश्व-रूप उपस्थित किया है उसमें कितना श्रद्धा उद्रेक है—गौरव का प्रकट करने वाला ! गुप्तजी और प्रसादजी को भारतीय गौरव को जीवन-दान के जिस श्रेय का भागी समझा जाता है उसकी रूप-रेखा सत्यनारायणजी में बननी आरम्भ हुई। इस महिमा-मय मूर्ति के साथ कवि ने वर्तमान जर्जरता को भी नहीं भुलाया। गौरव तो भारत के लिए शाश्वत सत्य है—

पहले ही पहले देखा जिसने प्रभात प्यारा ।

देवेश को जहाँ पर अवतार लेना भाया ॥

×

×

×

×

कवि भारत-भुवि महतारी की वन्दना कर रहा हैः—

बन्दौँ भारत-भुवि महतारी ।

शेष अस्थि पिंजर बस केवल, भययुत चकित विचारी ।

रोग अकाल दुकाल सताई जीगन देह दुखारी ।

मुरझाई माधवी लता-सी, जनु पाले की मारी ।

गहरे उष्ण उसास भरति जो, नित नव विपति निहारी ।

धूल-धूसरित जाकी भलकैं अलकैं स्वेत उधारी ।

मातृ-भूमि को इतने वात्सल्य से सजीव मूर्त कल्पना के साथ कम कवियों ने ही देखा है।

प्रकृति ने तो कवि को वर्णन ही कर लिया प्रतीत होता है ।
'रत्नाकर' की भूमिका में बाबू श्यामसुन्दरदासजी ने लिखा है—

“घटना और पात्रों का निर्वाह करने की चिंता में ब्रजभाषा के कवियों को प्रबन्ध क्षेत्र के भीतर तो प्रकृति-वर्णन की सुविधा मिली ही नहीं, मुक्तकों में भी ऋतु-वर्णन अधिकतर नायक-नायिका के ही प्रसंग से किया गया । अतः वर्णन की दृष्टि से ऋतुगै अयथार्थ और नीरस ही रहीं । सेनापति आदि कुछ कवियों ने अवश्य वास्तविकता से काम लिया, परन्तु वह भी बहुत दूर तक नहीं जाती । प्रत्येक ऋतु की एक सुखद या दुखद भावना ही प्रस्फुटित होकर रह जाती है; प्रकृति के अन्य प्रभाव-शाली रहस्य प्रकट ही नहीं होते । अंगरेजी कवि वर्ड्सवर्थ की-सी प्रकृति की सजीव सत्ता की आध्यात्मिक अनुभूति पुराने हिन्दी के किसी कवि को प्राप्त नहीं हुई ।”

किन्तु लेखक यहाँ सत्यनारायणजी को भूल गया—ध्यान गया ही नहीं । यद्यपि सत्यनारायणजी ने प्रकृति पर विशेष नहीं लिखा, पर जो लिखा है वह उपेक्षणीय नहीं । उसके रहते हुए बाबूजी का उपर्युक्त कथन अनुचित ठहरता है । सत्यनारायणजी ने ऋतुओं के वर्णन में बहुत ही यथार्थ सरस और सजीव सत्ता की अनुभूति से युक्त चित्र उपस्थित किए हैं । आध्यात्मिक अनुभूति चाहे वर्ड्सवर्थ की-सी न हो, किन्तु यथार्थता का अभाव किंचित् भी नहीं ।

उस यथातथ्य वर्णन में सजीवता स्पष्ट आँख मलते और जमुहाई लेते दिखलाई पड़ती है । वसंत में कवि कहता है—

लखि तुम्हरे पद-कञ्ज रञ्ज सब भूलि-भूलि वन ।
साजि साजि सँग ललित लहलही लौनी लतिकन ॥

भाँति-भाँति के बिटप पटनि सजि वे ही आवत ।
 कोऊ फल कोऊ फूल मुदित मन भेटहिं लावत ॥
 “जयति” परसपर कहत पसारत आपनि डारन ।
 मनहुँ मत्त मन मिलन मित्र कर कर गर डारन ॥

× × × ×

वह देखौ नव कली भली निज मुखहिं निकारति ।
 लगि लगि वात प्रभात गात अलसात सम्हारति ॥

प्रकृति का जो रूढ़ि-उत्क्रामक रूप उन्होंने देखा वह सर्वथा भव्य और नव्य है। उनके लिए प्रकृति केवल उद्गीपन की वस्तु नहीं। उसका अपना निजी आकर्षण है। ऋतुओं को उन्होंने एक शक्ति के रूप में अनुभव किया। उसमें चेतना है। क्या ब्रज और क्या ग्वड़ीबोली दोनों में ही अभी तक प्रकृति की चेतन-कल्पना का अभाव था। ग्वड़ीबोली तो इस समय तक जगन के धगतल पर थी, वह प्रकृति की ओर देखना चाहती थी। श्रीधर पाठक में उसकी दृष्टि उधर गई। किन्तु वहाँ प्रकृति सजीव और चेतन नहीं हुई, केवल उसका सौन्दर्य ही स्फूर्ति-मय हुआ। वह उद्गीपन-क्षेत्र से तो आगे बढ़ी और उसने अपनी ही निकाई को दर्पण में देख कर सँवारा—सजग लोक में वह सत्यनारायण के द्वारा पहुँची।

पाठक जी की वाणी इन स्वरों में विकल हुई है:—

कहीं पै स्वर्गीय कोई बाला,

सुमञ्जु वीणा बजा रही है।

सुरों में संगीत की सि कैसी,

सुरीली गुंजार आ रही है।

हर एक स्वर में नवीनता है,

हरेक पद में प्रवीनता है।

निराली लय है औ लीनता है,
 अलाप अद्भुत मिला रही है ।
 सुनो तां सुनने की शक्ति वालो,
 सको तो जाकर के कुछ पता लो ।
 है कौन जोगन कि जो गगन में,
 कि इतनी चुलबुल मचा रही है ।

काश्मीर के सम्बन्ध में उन्होंने कहा:—

कै यह जादूभरी विश्व-बाजीगर थैली ।
 खेलत में खुलि परी शेल के सिर पै फैली ॥
 खिली प्रकृति पटरानी के महलन फुलवारी ।
 खुली धरी कै भरी तासु सिंगार पिटारी ॥
 प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निजरूप सँवारति ।
 पलपल पलटति भेस छनिक छवि छिनछिन धारति ॥
 विमल अंबुसर-मुकुरन मँह मुख बिम्ब निहारति ।
 अपनी छवि पै मोहि आपही तन-मन बारति ॥

उधर सत्यनारायणजी का वसंत आने को है—

जो तरु विथित-वियांग सदा दरसन तव चाहत ।
 नौचि-नौचि कच-पातनि अश्रु-प्रवाह प्रवाहत ॥
 देखहु किशलय नहीं, आँखि अति अरुण भईं तिन ।
 रोवत-रोवत हाय ! थके, अब ढेर सुनो किन ?
 तुम्हरी दिसिहि निहारि पुलकि तन, पात हिलावत ।
 कर सौं मानहुँ मिलन तुमहिं निज ओर बुलावत ॥
 बौरे नहीं रसाल बने बौरे तव कारन ।
 बलिहारी तव नेह-नियम निठुराई धारन !
 तुम सौ कठिन कठोर और जग दूसर दीख न ।
 सांचो किय निज नाम “पञ्चशर को शर तीखन” !

प्रकृति में प्रकृति के प्रति आकर्षण, स्वाभाविक भावों का उदय, उनमें परस्पर ही आलंबन और आश्रय का विधान, फिर उसको ऐसा निजी संबोधन कि—

तुम सौ कठिन कठोर और जग दूसर दीख न—

ये सभी प्रकृति की सजग चेतनायुक्त मूर्त कल्पना के द्योतक हैं। यहाँ पर प्रकृति को अधिष्ठित करके कवि चला गया, उसने छायावादी कवि के लिए सीढ़ी प्रस्तुत कर दी।

इस प्रकृति ने कवि के गाँवों के वातावरण से अपना संसर्ग घनित बना रखा है। कवि की ग्रामीणता से प्रकृति के वर्णन बहुत सौम्य हो गये हैं। उनमें अलहड़पन है, भोले क्रीड़ा-कौतुकों का आवर्तन-विवर्तन है, एक आह्लाद है, और फिर एक विपाद है।

उनमें नवयुग की भावना मूल में विद्यमान थी। उन्होंने जो विनय की भाँति पद लिखे—उपालम्भ ही हैं वे—उनमें सूर से भी अधिक उद्गुण्डता है—दीनता में अन्य भक्त कवियों की भाँति उन्होंने अपने को पापी अथवा उनमें शिरामणि नहीं कहा। जहाँ कहा भी है वहाँ सम्भावना के रूप में, निश्चय के रूप में नहीं।

माधव कबलौं मौन गहोगे ?

इन आँखिनु पै धरें ठीकुरी कितने और रहोगे ?

ऐसी शास्त्री, कि भगवान् को निर्लज्ज बताया जा रहा है। कवि के हृदय में भारत की अन्तर्वेदना बैठ गयी है। उसकी भावनाओं का भारत से तादात्म्य हो गया है। यही कारण है कि उसकी विनय सूर आदि पूर्ववर्ती तथा अन्य परवर्ती भक्त कवियों की कान्ति में नहीं आती। वे जब कहते हैं यही, कि—

‘तुम देवत भारत-मानव-कुल आकुल छिन-छिन छीजै;

×

×

×

×

अब न सतावौ !

करुणा घन इन नयनन सौं, द्वै बुंदिया ता टपकावौ
मारे जगसों अधिक कियो का, ऐसा हमने पाप ।
नित नव दर्ई निर्दई बनि जो देत हमें संताप ।

x x x x

परखो प्रेम किये का आवै ।

x x x x

उठो देव, अब या भारत को खोलि युगल दृग देखो ।
जासों सत्य बनें सब कारज, करै न कांउ परखो ॥

व्यष्टि की अन्तर्व्यथा पुञ्जीभूत हांकर समाष्टि के लिए न्यौछावर हो गई है। उसको दीनता के पीछे एक स्वाभिमान उसके काव्य का कितना ऊंचा किये दे रहा है। वह ईश्वर को देखता है, फिर भारत का देखता है, उसकी समझ में नहीं आता, ऐसी दयनीय दशा में कौन होगा जो निष्ठुरता धारण किये रहेगा। उसका व्यथित हृदय रोता है और भगवान् को कांसता है, फिर रुक जाता है। वह कहता है:—

वेद पुरान तुम्हारे जस के, नभ में महल बनावत ।

पै वैसे गुन, छिमा कीजिये, तुम से एक न पावत ॥

इस 'छिमा कीजिये', को तो देखिये ! कवि का हृदय कैसा तिलमिला कर अपनी अभिव्यक्ति को आकुल हो रहा है, पर फिर सोचता है:—

मांची तुमहि सुनावत जो हम, चौकत सकल समाज ।

अपनी जाँघ उधारे उधरति, बस अपनी ही लाज ॥

कवि की करुणा कैसी आर्द्र है—और यही शाश्वत कवित्व था कवि में, जिसने सहृद्यों को मोह लिया !

यह अन्तर्व्यथा, यह उत्तप्त विपाद, यह आर्द्र करुणा आज युग-धर्म बन गई है। वह स्वयं कवित्व होकर शतधा स्रोतों से हिन्दी-साहित्य का सींच रही है। सत्यनारायण की यह करुणा स्वभावज है—बंगाली अथवा अंग्रेजी अनुकरण पर नहीं। 'प्रेम-कली', 'प्राकृतिक सान्दर्भ' और 'भ्रमर-दृत' में इसकी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति है।

कवि सत्यनारायण के कवित्व के उदय और उसके अस्त की कथा 'सत्यनारायण की जीवनी' में श्री पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने दी है। निस्संदेह सत्यनारायणजी का जीवन करुणामय और काव्यमय रहा। उनके कवि-यौवन ने अपने अन्तःप्रेम की मूर्ति बनाना आरम्भ किया था। जो शाश्वत कवित्व कवि में जग कर मातृ-भूमि के चरणों में लोट रहा था, वह कभी स्वयं शाश्वत पर ही बलिहार होता—कभी अपनी उस करुणा की प्रेम-प्रतिमा को साक्षात् खड़ा करता—उमके योग्य स्वर उसके पास था, भाषा की माधुरी उसके पास थी, सब रंग उसने जुटा लिये थे, हृदय-सामग्री का अभाव न था, पर न हो सका। उनके जीवन के साथ-साथ ही उनके काव्य का भी भग्नांत हुआ।

'हृदय-तरंग' में ऐसे ही कवि के हृदय की तरंगें हैं। उनमें हृदय-भुलाने वाली सहृदय ग्राम्य-सुपमा से परिपूर्ण और परि-सावित देश काल की परिधि से वेष्टित एक उच्च धरातल की काव्यधारा कलकल टलमल सुन सकेंगे। उस काव्य-धारा ने भावों का ऊर्ध्वगामी ज्योति-स्तूप खड़ा किया है—भाषा की मधुरिमा से मण्डित, प्रेम की अधखिली कली से सुवासित तथा शाश्वत करुणा से अनुप्राणित। उसमें हृदय-सर की छोटी-बड़ी सभी तरंगें हैं यानी हलकी बीचियें भी और लहरें भी। उनसे दोलित मन ही स्पष्ट अनुभव कर सकेगा कि सत्यनारायण का

कवि कितने गहरे मर्म में चुटकी ले रहा है। उसमें पाण्डित्य का प्रदर्शन न हो—पाण्डित्य कविता को बोझिल बनाता है, उसे अपरूप कर देता है, उसमें अलंकार और उक्तियों का (अभिप्राय वक्र उक्तियों से है) चमत्कार न हो, किन्तु वह हृदय है जो सूर, मीरा और तुलसी को मिला और जिसने अपना इष्ट अपना देश-प्रेम बनाया।

छह सात वर्ष की अवस्था से ही कविता करने वाला यह जन्म-सिद्ध कवि थोड़ा ही अवकाश पा सका। १५ अप्रैल १९१८ को वह हृदय में करुणा 'पुञ्जीभूत' किये, सीधी सच्ची व्यथा के साथ न जाने किस अर्थ-भरी दृष्टि से अपनी हृदयहीन पत्नी को देखता हुआ ब्रजभाषा का एक महाकवि और उसके साथ ही एक महान् मनुष्य भी हिन्दी संसार को सूना कर गया। उसी की अमर स्मृति का यह आयोजन सभी साहित्यिकों को स्वीकार होगा—अवश्य होगा।

मथुरा }
१-१०-४० }

सत्येन्द्र

विनय



विनय

१

तिहारो को पावै प्रभु, पार ।
बिपुल सृष्टि नित नव विचित्र के, चित्रकार आधार ।
मकरी के सम जगत-जाल यहि, सृजत और विस्तारत ।
कौतुक ही में हरत ताहि पुनि, वेद-पुरान उचारत ।
जग में तुम, औ तुम में सब जग, वासुदेव अभिराम ।
सकल गंग तन वसत आपके, याही सों बनश्याम ।
परम पुरुष तुम प्रकृति-नदी सँग, लीला रचत अपार ।
जग-व्यापन सों विष्णु कहावत, अचरज तउ अविकार ।
जितने जात समीप, दूर अति होत जात तव ज्ञान ।
'मन्य' नितिज-सम तरसावत नित विश्वरूप भगवान ॥

—जनवरी १९१७—

२

निरखत जित तित ही तुम व्यापक ।

भुवि सों नभ लों, सकल पदारथ कार्य कुसलता-ज्ञापक ।
 सन्ध्या-प्रात रैन-दिन षट ऋतु, क्रम सों सब चुपचाप ।
 आवत-जात जगत-अभिनय-थल. अविकल अपने आप ।
 गिरि उत्तुंग शृङ्ग नभ चुम्बत, प्रकृति मनोहर वेश ।
 हिम-मंडित रविकर-रञ्जित नित, करत उमंग अशेष ।
 शस्य श्याम अभिराम छेत्र चहुँ, सजल सरित-सर पावन ।
 मलयज सीतल हीतल सुखप्रद, धीर समीर सुहावन ।
 सुभग स्वच्छ स्वच्छन्द द्रुमावलि, नम्र लता मृदु काया ।
 अचरज सरसावत, हरसावत, दरसावत तव माया ।
 रवि शशि आदि दारुयोषित सम, करत स्वकाज निरन्तर ।
 अद्भुत अमित परत नहि तामें, तिल भरि हू कौ अन्तर ।
 अकथ प्रदर्शन पुण्य पंक्ति में, नित नव नाचन हारे ।
 विहँसत अधर प्रमाद चमत्कृत, चंचल चारु सितार ।
 जगमगात प्रति पल मुख-मण्डल, अनुपम परम पुनीत ।
 गावत सत अव्यक्त सुध्वनि सों, विश्वरूप, तव गीत ॥

—पौष १९७३

३

को गुन अगम थाह तव पावै ।

विश्वरूप अद्भुत अगाध अति, अनुपम किमि कहि जावै ।
 रोम-रोम ब्रह्मांड ग्रथित रवि, अनगिन ग्रह, ससि तारे ।
 भ्रमत धुरी अपनी-अपनी पै, निसि-दिन न्यारे-न्यारे ।

घूमत सकल चन्द्र मण्डल में, करत निरन्तर ज्योती ।
 इक आकरसन शक्ति डोरि में, मनहुँ परोये मोती ।
 फूल-भरी मनहरी हरी सिर सारी रसा विराजै ।
 उडुगन रुचिर नभस्थल प्रतिकृति प्रियतिह मधि जनु भ्राजै ।
 कबहुँ सघन घन नित नूतन तन, धावत द्रुत दरसावत ।
 विद्युत् दमकत तिन ललाट सों, श्रम सीकर बरसावत ।
 मदमाती रसवती सरित कहूँ, रसनिधि अङ्क मिलाई ।
 प्रकृति रम्य पुनि ऋतु-परिवर्त्तन, चहुँ दिसि छवि छिटकाई ।
 होत विज्ञ बाचाल मृक, लखि गति, रहस्य-रस-राँची ।
 भगवन 'नेति-नेति' तव कीरति, लसै अखिल जग साँची ॥

—अक्टूबर १९१६

४

कमल नयन, भुजंग शयन, सुजन अभयकारी ।
 करुणामय दीनबन्धु, पावन प्रिय प्रेम-सिन्धु,
 भक्तन-मम मोद भरन, सतत सौख्यकारी ।
 असरन जन निरत सरन, दारिद दुख दुन्द दरन,
 मंजुल मर्याद थाप, सुभ स्फूर्ति कारी ।
 जग-जागृति मूल आप, उन्नति करि हरत ताप,
 रचि-रचि साधन अनूप, प्रबल शक्ति धारी ।
 सब विधि तुम पितु स्वरूप, अखिल विश्व-भवन्य भूप,
 तजिकै सब भेद भाय, जग के उपकारी ।
 जागै अरु जगमगाय, नव जीवन सत्य पाय,
 सकल भारतीय जाति, विनय ये हमारी ॥

—चैत्र १९७२

५

दया ऐसी कीजे भगवान ।

जासों हिन्दू जाति करै सब प्रेम-गंग असनान ।

सीतल रस परसत बस याकौ हीतल ताप विनासै ।

हरे मघन कलि-कलुष-आवरन पावन भाव विकासै ।

जब जातीय अभ्युदय-सूरज प्रतिभा-प्रभा जगावै ।

निज कर चंचल तार तरंगनि छेड़ि हृदय लहरावै ।

तब हिन्दी भाषा में हम सब मिलि भैरवी अलापै ।

चरचें कर्म-योग चन्दन की तिलक अनूपम छापै ।

बिलसैं मोद लसैं नित नव से आत्म-भाव संचारै ।

धर्म-ध्वजा गहि जगत मनोहर सत शिक्षा विस्तारै ॥

—वैशाख १९७२

६

जय जय जयति शक्ति महारानी ।

तारा तरणि तारणी माया नारायणी भवानी ।

दुर्गति हारिनि दुरित निवारिनि जग जन अक्षर-आसे ।

लोक-पालिनी सौख्य शालिनी कृत-वर-विजय-विकासे ।

कान्ति, कीर्त्ति, धृति, मेधा तुष्टी पुष्टि दया रुचि रूपे ।

शान्ति, ज्ञान्ति, ऋधि सिद्धि शुद्धि सत श्रद्धा मुक्ति अनूपे ।

सत रज तम त्रय गुणसों भूषित अजरे अजे अनन्ते ।

जग अगोचरे शिवे सनातनि ब्रह्म-विभूति अचिन्ते ।

तब पद प्रेम विरत यह भारत परम दीन, बल नाहीं ।

मणि बिन फणि, जल-हीन मीन सम अति निस्प्रभ जगमाहीं ।

विनय

सहज सदय तुम जननि सदां की, याकों अस वर दीजै ।
जगमगाय जासों नव जीवन यहि मधि, रिपुदल छीजै ।
मानव-उचित-आत्म-गौरव सों यासु हृदय लहरावै ।
पालै नित कर्त्तव्य सत्य यह निज अभिमत फल पावै ॥

७

ॐ जयति जयति जननी—

अमल-कमलदल-वासिनि, वैभव-विपुल-विलासिनि ।
नितनव-कला-विकासिनि, मुद मंगल-करनी ।
भुवन विदित गुन रासिनि, सु-मधुर मंजुल भासिनि ।
निज जन हृदयोल्हासिनि, श्रुति पुरान वरनी ।
दारिद दुख दल नासिनि, उर उत्साह प्रकासिनि ।
शान्ति सतत अभिलासिनि, त्रिभुवन मन हरनी ॥

८

जै जै मंगलमयी भारती, अखिल भुवन की बानी ।
अनुपम अद्भुत अमल प्रभा, जिह सकल जगन छहरानी ।
ब्रह्म-विचार-सार में नित रत, आदि-शक्ति महारानी ।
विश्वव्यापिनी श्रुति अलापिनी, सुखद, शुद्ध कल्याणी ।
ब्रह्मचारिनी, बीनधारिनी, दयामयी, शुभ-दैनी ।
नवल कमलदल आसन राजत, नवल कमल दल नैनी ।
जगमगात मंजुल मुखमंडल, जगत पुनीत प्रकासा ।
जासों विविध अविद्या तम को होत तुरन्त विनासा ।
ऐसी वरदे शक्ति मुक्ति दे. अहो शारदे माई ।
करत विनय तुमसों हम सब यह स्वीकृत करु हरसई ।

हृदय तरङ्ग

तुम ही हो मा ! सकल भाँति सों, या भारत की आशा ।
प्रगटें हृदयभाव कहु कैसे बिन बानी बिन भाषा ।
जासों भारति ! भारत-जन की रसना सदा विराजो ।
ऐसे दिये बिसारि देवि ! क्यों ? मुदित दया निज साजो ।
जग के और और देसनि हित जैसी तुम सुखदाता ।
जानि स्वजन भारत हू कों, तिमि द्रवहु भारती माता ।
जबलौं भारत देश विश्व में जीवित नित मन भावै ।
तबलौं नाम भारती अविचल अजर अमर छवि पावै ।
आवहु आवहु शीघ्र शारदे ! वृथा विलम्ब न कीजै ।
या भारत की दीन दशा लखि क्यों नहिं हीय पसीजै ।
बिगरथो कछु न यहाँ सुनि अजहूँ, हरहु हियो आँधियारो ।
स्वागत स्वागत जननि तिहारो पुनि निज भवन सँवारो ।
सहृदय सुभग सरसता सब के हृदय माँहि सरसावो ।
सुमति-प्रभाकर की पुनीत प्रिय सुखद प्रभा परसावो ।
हृदय हृदय मधि होइ प्रफुल्लित नवल कली अभिलाखें ।
मन मिलिन्द नित गुञ्ज-गुञ्ज कर निज अभिमत रस चाखें ।
नित जातीय समुन्नति हित में सकल सुजन अनुरागें ।
भेद भाव तजि निरखें शोभा निज-निज निद्रा त्यागें ।
कार्य कुशल हों सकल भाँति हम निज कर्त्तव्य विचारें ।
वर्ते प्रेम परस्पर सब सों प्रेमभाव संचारें ।
परम सौख्यप्रद होइ देश यह ऐसी सुदया कीजै ।
तुव चरनन में निरत रहे मन 'सत्य' रुचिर वर दीजै ॥

—वैशाख १९७४

जयति जयति जननी ।

प्रभु-पद-पद्म प्रभासिनि, ब्रह्म-कमंडल वासिनि,
शंकर-सुयश विकासिनि, कलि-कलमप-हरनी ।
प्रकृति छटा सरसावनि वर विनोद वरसावनि,
सुर नर मुनि हरसावनि, मुद् मंगल करनी ।
सहृदय हृदय विहारिनि, धर्म प्रभा विस्तारिनि,
निज-जन-दुरित निवारिनि, नित तारनि तरनी ।
हिम-पट जवै उधारति, अनुपम शोभा धारति,
भारत-भूमि उधारति, सुन्दर-सुख-भरनी ।
मधुर पियूष लजामिनि, सघन-महीधर-दामिनि,
मञ्जुल मनोभिरामिनि, दारिद-दुख-दरनी ।
शेष महेश विशारद, शुक सनकादिक शारद,
सत्य-सुखद-नित नारद, कीर्त्ति कथा वरनी ॥



१०

जयति जयति बल अप्रमेय, दानव-दल-गंजन ।
जयति जयति श्री आञ्जनेय जग-जन-मन-रंजन ।
जयति कौशलाधीश-दूत-पुंगव अति पावन ।
जय उत्साह अकूत कीश यूथप मन भावन ।

जय जयति अभंजन सम प्रबल प्रतिथल निज संचार कर ।
जय कलित कुंडलाकार कृत शीर्ष बलित लांगूल धर ॥१॥
जय केशरी-कुमार सतत निसकाम सहायक ।
महावीर रघुवीर राम के साँचे पायक ।
जय लङ्घिमन प्रिय प्रान उबारक जग उपकारक ।
कठिन धर्म-संकट मधि आरज कुल उद्धारक ।

जय कार्य-परायन सकल विधि, अविचल प्रन अनुपम अमद ।
नित कृत पारायन सुभग सुचि भक्ति भाव विद्या विसद ॥२॥
जय असांक वन जाय सीय उर सांक निवारक ।
जय त्रिलोक मधि रामचन्द्र कीरति विस्तारक ।
जय समाज साम्राज्य नीति के विज्ञ विलच्छन ।
जय दशकंधर-मान-मथन कर बुद्धि विचच्छन ।

जय जय कपि-कुल-आनंद करन लाँघि अतुल जलनिधि गहन ।
जय जयति विभीषन-मन-हरन कृत सुवरन-लङ्का दहन ॥३॥
जयति जितेन्द्रिय वीर ब्रह्मचारी नयनेमी ।
जय गद्गद् प्रेमाश्रु बहावन पावन प्रेमी ।

विनय

जयति कर्मयोगी थिर-चित धृत धीरज प्रति पल ।
 जयति निराशा उदधि उच्च आशा प्रकाश-थल ।
 जय जयति निराश्रय श्रयद नित सब प्रकार तारन तरन ।
 जय अखिल आर्य इतिहास की मर्यादा पुष्टीकरन ॥४॥
 जय अगर्व अपु, तबहुँ दनुज दल गर्व प्रहारी ।
 जयति रुद्र अवतार किंतु तब प्रकृति पियारी ।
 जगमगात तब तेज जगत जग अजहु विराजत ।
 सुयश प्रभाकर प्रभा निरन्तर त्रिभुवन भ्राजत ।
 जय राम नाम पंकज प्रथित प्रिय पराग लोभी भ्रमर ।
 जय निसङ्क सद्गुन ग्रथित भक्तमाल सुम्मेरुवर ॥५॥
 जयति साम साँगीत गीत के सुन्दर गायक ।
 सत आचार विचार सुदृढ़ श्रुति सेतु विधायक ।
 जय प्रभु कारज अचल भार मन मुदित उठावन ।
 मन वच क्रम सों सकल भाँति करि पूरन लावन ।
 बरु कोटि विघन बाधा परै करतव पथ में तउ अभय
 जय यत्नशील सब स्वार्थ तजि करन हेतु प्रभु अभ्युदय ॥६॥
 किटकिटाय निज दंष्ट्र भीम मूरति जब धारत ।
 हाँक संग "श्रीराम जानकी जय" उच्चारत ।
 अट्टहास युत प्रबल चरन धरि धरनिहिँ चाँपत ।
 कसमसात क्रूरम सहसानन दिग्गज काँपत ।
 सुनि गगन भेदनी रन भयद कपि गर्जनि तर्जनि विकट ।
 जिय संक खात घननाद से सिथिल होत उद्भट सुभट ॥७॥

हृदय तरङ्ग

विजय मिलत दुर्बल जन हूँ को निश्चय रन में ।
भूत प्रेत बाधा करि सकै न बाधा मन में ।
ग्रह गृहीत भय भीत हृदय उल्लास विकासै ।
विफल यतन अरि होत राज सत्कार प्रकासै ।

सत डरत दुष्ट दल बरु प्रबल सकल रोग जग के जरत ।
जब दास दुःख द्रुत द्रवित चित दयादृष्टि मारुति करत ॥८॥

२०-११-१९१३

११

श्री जगदीश ।
कोरो प्रभो, न यों टरकावो, वैसे सब के ईश ।
बहुत दिना में खबर लई है, अब तो रस बरसावो ।
सत्य सरसता कौ नित नूतन, सबकों स्वाद चखावो ॥



उपात्मम्

उपालम्भ

१

माधव आप सदा के कोरे ।
दीन दुखी जो तुमकों याँचत सो दानिनु के भोरे ।
किन्तु बात यह, तुव स्वभाव वे नैकहु जानत नार्हीं ।
सुनि-सुनि सुयस रावरो तुव ढिंग आवनकों ललचाहीं ।
नाम धरै तुमकों जग मोहन ! मोह न तुमकों आवै ।
करुणानिधि तुव हृदय न एकहु करुणा बुन्द समावै ।
लेत एक को देत दूसरेहि दानी बनि जग माहीं ।
ऐसो हेर फेर नित नूतन लाग्यो रहत सदाहीं ।
भाँति भाँति के गोपिन के जो तुम प्रभु चीर चुराये ।
अति उदारता सों लै वेही द्रोपदि कों पकराये ।
रतनाकर कों मथत सुधा कों कलस आप जो पायो ।
मन्द-मन्द मुसकात मनोहर सा देवन कों प्यायो ।
मच्च गयन्द कुवल्या के जो खेल प्राण हर लीने ।
बड़ी दया दरसाइ दयानिधि सो गजेन्द्र कों दीने ।
करि के निधन वालि रावण को राजपाट जो आयो ।
तहँ सुग्रीव विभीषण कों करि अति अहसान बिठायो ।
फुँडरीक को सर्वनास करि माल मता जो लीयो ।
ताकों विप्र सुदामा के सिर कर सनेह मढ़ि दीयो ।

ऐसी 'तूमा पलटी' के गुन नेति नेति श्रुति गावैं ।
 सेस महेस सुरेस गनेसहु सहसा पार न पावैं ।
 इत माया अगाध सागर तुम डोबहु भारत नैया ।
 रचि महाभारत कहूँ लरावत अपु में भैया भैया ।
 या कारन जग में प्रसिद्ध अति 'निबटी रकम' कहाओ ।
 बड़े-बड़े तुम मठा धुंवारे क्यों साँची खुलवाओ ॥

— ज्येष्ठ १६७२

२

माधव अब न अधिक तरसैये ।
 जैसी करत सदां सों आये, वुही दया दरसैये ।
 मानि लेउ, हम कूर कुहंगी कपटी कुटिल गँवार ।
 कैसे असरन-सरन कहो तुम जनके तारनहार ।
 तुम्हरे अछत तीन तेरह यह देस दसा दरसावै ।
 पै तुमको यहि जनम धरे की तनकहु लाज न आवै ।
 आरत तुमहिं पुकारत हम सब सुनत न त्रिभुवन राई ।
 अँगुरी डारि कान में बैठे धरि ऐसी नितुराई !
 अजहुँ प्रार्थना यही आपसों अपनों विरुद संवारौ ।
 सत्य दीन दुखियन की विपता आतुर आई निवारौ ॥

— आषाढ़ १६७२

३

माधव तुमहुँ भये बेसाख ।
 वुही ढाक के तीन पात हैं, करों क्यों न कोउ लाख ।
 भक्त अभक्त एकसे निरखत, कहा होत गुन गायेँ ।
 जैसो खीर खवायेँ तुम को वैसोहि सींग दिखायेँ ।
 सबै धान बाईस पसेरी, नित तोलन साँ काम ।
 बलिहारी, नहिं विदित तुम्हें कछु ऊँच नीच कौ नाम ।
 बे-पैदी के लोटा के सम, तब मति गति दरसावै ।
 यह कछु को कछु काज करत में, तुमहिं लाज नहिं आवै ।
 जगत-षिता कहवाय, भये अब ऐसे तुम बेपीर ।
 दिन दिन दुगुन बढ़ावत जो नित द्रोह-द्रोपदी-चीर ।
 जुगकर जोरि प्रार्थना ये ही निज माया धरि राखौ ।
 मृत्यु दीन दुखियनु के हित कों सदयहृदय अभिलाखौ ॥

—चैत्र १६७३

४

भयो क्यों अनचाहत को संग ।
 सब जग के तुम दीपक मोहन, प्रेमी हमहुँ पतंग ।
 लखि तब दीपति-देह-शिखा में निरत विरह-लौ लागी ।
 खिंचति आप सों आप उतहिं, यह ऐसी प्रकृति अभागी ।
 अदपि सनेहभरी तब बतियाँ, तउ अचरज की बात ।
 योग वियोग दोउन में इकसम नित्य जरावत गात ।
 जब-जब लखत, तबहिं तब चरनन, वारत तन मन प्रान ।
 जासों अधिक कहा, तुम निरदय, चाहत प्रेम-प्रमान ।

— १७ —

सतत घुरावत ऐसो निज तन, अन्तर तनिक न भावत ।
निराकार है जात यहाँ लों, तउ जन कों तरसावत ।
यह स्वभाव को रोग तिहारो हिय आकुल पुलकावै ।
सत्य बतावहु, का इन बातनि, हाथ तिहारे आवै ॥

—आषाढ़ १६७३

५

मोहन, अजहुँ दया हिय लावौ ।
मौन-मुहर कबलों टूटेगी, हरे ! न और सतावौ ।
खबर बसंतहु की कछु तुम कों, विरुद बानि बिसराई ।
ऐसी फूल रही सरसों सी, तव नयनन में छाई ।
अचल भये सष अचल, देखिये, सरि से अश्रु बहावैं ।
सूरज पियरे परे, मोह बस, चिन्तित दौरै जावैं ।
दुम तक हू के हृग नव किसलय रोइ भये अरुणारे ।
दारुण देश दशा लखि बौरै ये रसाल चहुँ सारै ।
अचला लता कलेवर कोमल कम्पित भय दरसावैं ।
लम्बी लेत उसास जानिये, जबै हृदय लहरावैं ।
कागी कोयल कूक कलाकल यदपि गुहार मचावत ।
चहुँ अरण्य-रोदन सम सुनियत, कछु न प्रभाव जनावत ।
लखियत ना सद्भाव कमल अब कुसुमित मानस माहीं ।
कोरी प्रकृति-छटा बस सुन्दर तथा रही कछु नाहीं ।
जन्म-भूमि निज जानि, साँवरे, याकौ हित अभिलाखौ ।
अर्ध दग्ध जड़ दशा बीच अब अधिक न याकौ राखौ ॥

—फाल्गुन १६७२

६

मोहन ! कब लौं मौन गहोंगे ।

निज आंखिन पै धरै ठीकुरी, कितने और रहोंगे ?

तुम देखत-भारत, मानव कुल आकुल छिन-छिन छीजै ।

कहा भयो पासान हृदय तव, जा नहिं तनिक पसीजै ।

‘रसना’ नाम भयो अब साँचो, ढेरत-ढेरत हारै ।

छुट्यो न तउ तव हृदय-कृष्णपन, दृगसों चले पनारै ।

विपति-ग्राह ने ग्रस्यो विश्व-गज, होन चहत अनहोनी ।

ऐसे समय, साँवरे, सूझी तुम कों आंखिमिचौनी ।

भुवन विदित निज सत गुन तुमने, कहौ कहाँ विसराये ।

रह्यो स्वभाव यही जा, तौ क्यों करुणासिन्धु कहाये ॥

—वैशाख १९७२

७

अब न सतावौ !

करुणावन इन नयनन सों, द्वै वुंदियाँ तो टपकावौ ।

सारे जग सों अधिक, कियो का, ऐसो हमने पाप ।

नित नव दर्ई निर्दई बनि जो देत हमें सन्ताप ।

साँची तुमहिं सुनावत जो हम, चौकत सकल समाज ।

अपनी जाँघ उधारे उधरति बस अपनी ही लाज ।

तुम आछे हम बुरे सही बस, हमरो ही अपराध ।

करनां हो सां अजहूँ कीजै, लीजै पुण्य अगाध ।

होरी सी, जातीय प्रेम की फूँकि, न धूरि उड़ावौ ।

जुग कर जोरि यही सत मांगत अलग न और लगावौ ॥

२६-२-१९९८

८

उठो, अब सोय चुके प्रभु जागो ।
 नयन खोलि या जग पालन में करुणा करि अनुरागो ।
 अब के जो हृग मीचि लिये तुम सेस-सयन के माहीं ।
 अतिशयोक्ति नहिं, साँच मानिये, सेस रहै जग नाहीं ।
 अधिक रुधिर-रञ्जित-वसुधा अब नाथ न देखी जाती ।
 लेउ समेटि आपनी लीला चहुँ दिसि भय दरसाती ॥
 सहस्रन विधवा अरु अनाथ को रुदन सुन्यो नहिं जावै ।
 पै तव हृदय, न जाने क्यों, अब दया न भगवन आवै ॥

—कार्तिक १६७२

९

परखो प्रेम किये को आवे ।
 कहा कहें मन मूढ़ बड़ो यह जो तुम्हरे डिंग जावे ।
 होती बात हमारे बस की, कबहुँ न लेते नाम ।
 करतो चाहे जगत, भले ही कितनो हू बदनाम ।
 जो चाहत तुम को निस वासर प्रेम प्रमत्त अपार ।
 तिनके संग, अनोखो ऐसो करत आप व्यौहार ।
 मुनत रहे जो मुख अनेक सों, अनुभव में अब आई ।
 'ऊँची बड़ी दुकान तिहारी फीकी बनै मिठाई' ।
 तन मन धन सर्वस्व निछावर करें जो तुम्हरे हेत ।
 तिन के बँट निर्दयता ऐसी, कैसे दया निकेत ।
 चितवत जे चकोर से, तुमको लखि पावत आनन्द ।
 तिन को तुम नित नये जरावन भले भए ब्रजचन्द ॥

व्याध, गीध, गज, अरु निषाद से पतितन कों तुम तारयो ।
 भुवन-विदित वर विमल आर्य-कुल हमने कहा विगारयो ।
 वेद पुरान तुम्हारे जस के, नभ में महल बनावत ।
 पै वैसे गुन, छिमा कीजिये, तुम में एक न पावत ।
 सोवत सुखद शेष-शय्या पै करत प्रमोद अशेष ।
 जिए मरे वरु कोउ जगत में चाहे रहै न शेष ।
 उठौ देव, अब या भारत कों खोलि युगल दृग देखो ।
 जासों सत्य थनैं सब कारज, करै न कोउ परेखो ॥

—१६७३

१०

बस, अब नहिं जाति सही ।
 विपुल वेदना विविध भांति, जो तन मन व्यापि रही ।
 कबलों सहें, अवधि सहिबे की कछु तो निश्चित कीजे ।
 दीनबन्धु, यह दीन-दशा लखि क्यों नहिं हृदय पसीजे ।
 बारन दुख-टारन, तारन में प्रभु तुम बार न लाये ।
 फिर क्यों करुणा करत स्वजन पै, करुणानिधि अलसाये ।
 यदि जो कर्म-यातना भोगत, तुम्हरे हू अनुगामी ।
 तौ करि कृपा बतायो चाहियतु, तुम काहे के स्वामी ।
 अथवा विरद-बानि अपनी कछु, कै तुमने तजि दीनी ।
 या कारण, हम सम अनाथ की, नाथ न जो सुधि लीनी ।
 वेद वदत गावत पुरान सब, तुम त्रय ताप नसावत ।
 शरणागत की पीर तनिक हू तुम्हें तीर सम लागत ।
 हम से शरणापन्न दुखी कों, जाने क्यों विसरायो ।
 शरणागत-चत्सल सत योहीं कोरो नाम धरायो ॥

११

पालागन करजोरी, नाथ ऐसी खेलो न होरी ॥

गरब गुमान गुलाल जगत में कैसो मगन उड़ायो ।

घन अज्ञान अबीर छयो चहुँ तासों कछु न लखायो ।

करा यह क्यों बरजोरी ॥१

अहो कुरीति कुंकुमा का अब क्यों प्रभु मूँठि चलावौ ।

भरि पाखंड प्रबल पिचकारी रंग जंग बरसावौ ।

कलह की केसर घोरी ॥२

दर्ई मोह माजूम निरदर्ई भ्रम की भाँग खवाई ।

हरी 'हरी' सुधि बुधि जग ही की 'भडुआ भगति' मचाई ॥

लाज की गागरि फोरी ॥३

अपनी-अपनी ढपली पर अब रसिया बहुत गवाये ।

चेत करो नहिं तो पछितैहो कौन नसा मधि छाये ।

लिये सत कीरति कोरी ॥४

स्वदेश भक्ति

स्वदेश भक्ति

१

वन्दौ मातृभूमि मन-भावनि ।
जासु विमल जल मृदु फल बलप्रद,
मलयज सीर समीर सुहावनि ।
कलित ललित मंकुलित नवल वृत्त,
चमत्कार निज चहुँ चमकावनि ।
अति रमनीक नीक सुठि उज्जल,
चारु चाँदनी चटक लजावनि ।
अकथ अमित कुसुमित द्रुम दल-सी,
प्रकृति प्रमोद प्रेम सरसावनि ।
मंजुहासिनी, मधुरभासिनी,
सुख-विकासिनी, वरदा पावनि ।
तीस कांठि मुख अट्टहास करि,
दुरजन-हिय अति भय उपजावनि ।
साठि कोटि भुज गहि असि तीखी,
तरलित दुति दस दिसि दमकावनि ।
को कहि सकत तोहि अबला मा !
तू सबला रिपु-जिय धरकावनि ।

हृदय तरङ्ग

निज भुजबल खल-दल संहारनि,
 जन तारनि. कलि-कलुष नसावनि ।
 परम ज्ञान युत धरम-मरम, सब,
 करम तुही, जनमन पुलकावनि ।
 बाहु-शक्ति. उरभक्ति तुही,
 तन-प्राण पुण्यमय ज्योति जगावनि ।
 दुरगा तुही बसति प्रति घट-मठ,
 दस आयुध धरि धीर भरावनि ।
 कमला. अमल कमलदल वासिनि.
 बानी. विद्यावर वरसावनि ।
 अजर अतोल लोल सुखमासनि,
 अमर अमोल दृश्य दरसावनि ।
 सोहनि श्यामल सरल उर्वरा,
 विश्वविमोहनि. हिय हरसावनि ।
 आरज-धरनि. भरनि पोषणि जग,
 सतनारायण-आस पुजावनि ॥

१—४—१६०५

२

पूरब पच्छिम घाट चरण मुद मंगल-कारी ।
 विन्ध्याचल कटि देस नाभि-सांभर दुख-हारी ।
 उर सम्मिलित-प्रदेश, बंग, राजस्थल भावत ।
 मुख-मंडल कशमीर, ग्रीव पंजाब सुहावत ।
 तपत भानु-नव किरण-माल सुभ सुभग विराजत ।
 हेम वरण हिम चन्द्र भाल धवलागिरि भ्राजत ।

स्वदेश भक्ति

सधन तरुन की अवलि जटिल अति जटा सँवारत ।
हिम-मय स्वेत सुरंग सकल भव ताप निवारत ।
ब्रह्म श्याम अरु यवन देश युग भुजा पसारत ।
मार-उछाहहिं मारि क्रोध परलय परचारत ।
हिमगिरि सिर सों गंग पुण्य परवाह प्रवाहत ।
मत्स्यदेव अस शिव-भारत सों आनन्द चाहत ॥

२३ । ५ । १६०३

३

जय जय सुधि निरत लेवि, अमल सकल जगत-सेवि ।
भारत-भुवि जननि देवि, जन उधारिणी ॥ १
सुन्दर सुख-प्रद सुहात, जातरूप रूप जात ।
देखि दुरत हू दुरात, दरिद दारिणी ॥ २
तीस कोटि जयति गुञ्ज, मंगल मय रूप-पुञ्ज ।
विहरत जग-उर निकुञ्ज, कान्ति कारिणी ॥ ३
दरसत आमोद कन्द, सरसत सुखमा अनन्द ।
बरसत नित रस अनन्द, कष्ट दारिणी ॥ ४
दमनि सोग-रोग भीर, समनि प्रबल पाप पीर ।
रमनि जननि धीर वीर, जय प्रसारिणी ॥ ५
नित धरि उज्जल प्रकास, दीपत तव दुति-उजास ।
करि विनोद कौ विकास, हृदय हारिणी ॥ ६
सजल, सफल, सरल अम्ब, सदय हृदयविन बिलम्ब ।
जप-तप धरमावलम्ब, ब्रह्मचारिणी ॥ ७
षट ऋतु वर विमल पाय, शस्य श्यामला सुहाय ।
लहरति नित जगमगाय, दुख विदारिणी ॥ ८

हृदय तरङ्ग

मलयज मञ्जुल अतोल, पवन क्रोड़ लै अमोल ।
 करि करि क्रीड़ा कलोल, रुज प्रहारिणी ॥ १
 रविकर सज्जित सँवारि, चिर तुषार क्रीट धारि ।
 बिलसति सन्ताप हारि, बुधि सुधारिणी ॥ १०
 असरन कर सदा सरनि, निरखत हिय मोद भरनि ।
 तारा त्रयताप हरनि, तरणि तारिणी ॥ ११
 विदित सुभग श्रुति पुरान, सुर मुनि नर धरत ध्यान ।
 पद पद प्राकृतिक प्रान—पूर्ति पारिणी ॥ १२
 भञ्जनि कलिकलुष मूल, गञ्जनि भव-व्याधि शूल ।
 रञ्जनि जन मन सफूल, शोक वारिणी ॥ १३
 वीरोचित रखन मान, मैटनि खल दल निसान ।
 कोमल करलै कृपान. रिपु सँहारिणी ॥ १४
 करुणामयि विगति छद्म, बसुधा मधि सुधा सद्म ।
 आरज थल अमल पद्म, धूरि धारिणी ॥ १५
 मधुर मधुर मुसिकिगत. हरष हीय ना समात ।
 टपकत प्रेमास्रुजात, भय निवारिणी ॥ १६
 नय मारग मुदित गवनि. शोभा सुख सिद्धि सबनि ।
 श्रीपान अवतार अवनि. श्रुति विचारिणी ॥ १७
 दया दृष्टि हेरि हेरि, कमले कर कञ्ज फेरि ।
 काटहु सब विपति बेरि, शुभ-प्रचारिणी ॥ १८
 विद्या वर विनय पेनि, ललित मृदुल मधुर बैनि ।
 सत्यदेवि ज्ञान दैनि, काज सारिणी ॥ १९
 मात लई शरण तोर, करिके इत कृपा कोर ।
 हरति ताप क्यों न मोर, हिय विहारिणी ॥ २०

२१-३-१९०७

पावन परम जहाँ की, मंजुल आहात्म्य-धारा ।
पहले ही पहले देखा, जिसने प्रभात प्यारा ।
सुरलोक से भी अनुपम, ऋषियों ने जिसको गाया ।
देवेश को जहाँ पर, अवतार लेना भाया ।

वह मातृभूमि मेरी वह पितृभूमि मेरी ॥१॥
ऊँचा ललाट जिसका, हिम-गिरि चमक रहा है ।
सुवरन किरीट जिस पर, आदित्य रख रहा है ।
साक्षात् शिव की सूरत, जो सब प्रकार उज्ज्वल ।
बहता है जिसके सिर से, गंगा का नीर निरमल ।

वह मातृभूमि मेरी, वह पितृभूमि मेरी ॥२॥
सर्वापकार जिसके, जीवन का व्रत रहा है ।
प्रकृति पुनान्त जिसकी, निरभय मृदुल महा है ।
जहाँ शान्ति अपना करतब करना न चूकती थी ।
कोमल कलाप कोकिल कमनीय कूकती थी ।

वह मातृभूमि मेरी, वह पितृभूमि मेरी ॥३॥
वर वारता का वैभव, छाया जहाँ घना था ।
छिटका हुआ जहाँ पर, विद्या का चाँदना था ।
पूरी हुई सदा से, जहाँ धर्म की पिपासा ।
मत्संस्कृत पियारी, जहाँ की थी मातृभाषा ।

वह मातृभूमि मेरी वह पितृभूमि मेरी ॥४॥

सब मिलि पूजिय भारत माई ।
 भुवि-विश्रुत, सद्बीर-प्रसूता, सरल सद्य सुखदाई ।
 जाकी निर्मल कीर्ति-कौमुदी, छिटकि चहूँ दिसि छाई ।
 कलित केन्द्र आरज-निवास की, वेद पुरानन गाई ।
 आर्य-अनार्य सरस चाखत जिह, प्रेम-भाव रुचिगाई ।
 अस जननी पूजन-हित धावहु, बेला जनि कढ़ि जाई ।
 सुभट सपूत, अकूत साहसी, आरजपूत कहाई ।
 मातृभक्त सुप्रसिद्ध जगत मधि, प्रिय प्रताप प्रगटाई ।
 क्यों न जगत अब वार केसरी, बैठे अस अलसाई ।
 ऐक्य नखनि सों द्रोह-गयन्दहि भल विदारि रिसियाई ।
 चकित भयाकुल भारत-भुवि की, नासि सकल दुचिताई ।
 विरचि आत्म-अवलम्बन-आसन मा कों तहँ पथराई ।
 साजि स्वधर्म मुकुट तिह सिर पर दृढ़ता चौर डुलाई ।
 ईश-भक्ति की छत्र-छाँह करि, तजि निज कुमति कमाई ।
 विजय वैजयन्ती गर डारहु प्रेम प्रसून गुहाई ।
 अनुभव अमल आरती कीजे मंजुल हिय हरपाई ।
 प्रिय स्वदेश व्यापार-अर्घ जल, मिचन करहु बनाई ।
 जपहु मुदित मन सत्य मंत्र 'वन्देमातरम्' सुहाई ॥

स्वदेश भक्ति

६

बन्दों भारत-भुवि महतारी ।

शेष अस्थि पिंजर बस केवल, भययुत चकित विचारी ।
रोग अकाल दुकाल सताई जीरन देह दुखारी ।
मुरझाई माधवी लता सी, जनु पाले की मारी ।
गहरे उद्वेग उसास भरति जो, नित नव विपत निहारी ।
धूल-धूसरित जाकी भलकें अलकें स्वेत उचारी ।
अञ्जल फटे लटे तन ठाड़ी, सुधि बुधि सकल विसारी ।
तदुपरि देश विदेश पुत्र दुख, चिन्ता-व्याकुल भारी ।
सोच विचार पगी निसिबासर मन-मलीन हिय हारी ।
करत सहानुभूति नहिं कोऊ, यासों जगत मंभारी ।
निरालम्ब, धरि हाथ चिबुक पै नयन बहावत बारी ।
श्रीपति जन्मभूमि है कच्छ, जो श्रीहीन भिखारी ।
अन्नपूरण ताउ विथित अति, अन्न दीनता धारी ।
शस्य श्यामला बनी बनी सम, जा नीरस भयकारी ।
वरनी स्वर्गहुँ सो जो अनुपम, अब मसान अनुहारी ।
विस्तारति नित नित अति आरत दसा सकै न उचारी ।
'अबला' नाम किया जग साँचा, जगमें सकल प्रकारी ।
तीस काँट सुत अछत, दुखी तउ कैसी गति संसारी ।
जात लाज ब्रजराज राखिये याका कृष्ण मुरारी ।
सत्यदेव ! अब अधिक न या पं, विपदा जाति सहारी ॥

७

जय जय भारत मातु मही ।

द्रोण भीम भीषम की जननी, जगमधि पूज्य रही ।
जाके भव्य विशाल भाल पै, हिम मय मुकट विराजै ।
सुवर्ण जोति-जाल निज करसों, तिह शोभा रवि साजै ।
श्रवत जासु प्रेमाश्रु पुञ्ज सों, गंग-यमुन कौ बारी ।
पद-पंकज प्रक्षालत जलनिधि नित निज भाग सँवारी ।
चारु चरण नख कान्ति जासु लहि यहि जग प्रतिभा भासै ।
विविध कला कमनीय कुशलता अपनी मंजु प्रकासै ॥
स्वर्गादपि गरीयसी अनुपम अम्ब विलम्ब न काजै ।
प्रिय-स्वदेश-अभिमान, मान, सत ज्ञान अभय जय दीजै ॥

२६-२-१९१८

८

जय जय जय स्वतंत्रते प्यारी ।

तुव गाँत, नर मति समझ सकत नहि, अखिल लोक तें न्यारी ।
जा जन अरपत निज तन मन धन सकल तिहार कारन ।
औरहु दूरि क्षितिज सम, तासों भजत लगावै बार न ।
विविध भाँति के लालच द दे, निज जन मन ललचावै ।
ललकत गहन जबै मन वाँछित, ताहि तुरन्त हटावै ।
तरे अग्नि-कुण्ड में, सहसनु काटि स्वशीस चढ़ायो ।
किन्तु रही मुसकात, विमोहनि, नैक मोह नहि आयो ।
यह सब कौतुक कला रचन में ताहि स्वाद कहा आवै ।
निज-अनुमोदित सत्य-मार्ग, किन सत्वर जगहि दिखावै ॥

जनवरी १९१४

देवी मनुष्यते ! अब, वीणा मधुर बजादे !
 सुन्दर सुरीला गाना चित-शान्ति का सुनादे ।
 अज्ञान की अँधेरी, पथ भूल मारा मारा ।
 ये जग भटक रहा है, इसको प्रभा दिखादे ।
 भाई सभी परस्पर, ऊँचा न कोई नीचा ।
 समवेदना के मोहन मृदु मन्त्र को जतादे ।
 काला कलह का परदा, कृपया उसे हटा कर ।
 'एकात्मता' का दशन, दुनिया को फिर करादे ।
 नीरस न जाने कब का, मानव हृदय पड़ा है !
 प्यारी पियूष-धारा, उसमें बिमल बहादे ।
 सोती हुई कलाएँ, कविताएँ चारु कोमल ।
 कौशलमयी उन्हें तू, वस, छेड़कर जगादे ।
 सच्ची स्वतन्त्रता की ममता की भावनायें ।
 पावन प्रताप पूरण, इस जग में जगमगादे ॥

१०

देश के कोमल-हृदय कुमार,
 सरल सहृदयता के अवतार ।
 तुम्हीं हो ऋषियों की सन्तान,
 आर्य्य जन जीवन, धन अरु प्राण
 भारती गुण गौरव अभिमान,
 कोजिये मातृभूमि उद्धार ॥१॥ देश०

प्रबल पुनि सज्जनता के सद्ग,
 प्रेम-पद्माकर के प्रिय पद्म,
 सद्य सुन्दर सब भाँति अछद्म,
 कीजिये नवजीवन संचार ॥२॥ देश०

सभ्यता के शुचि आदि स्वरूप,
 मनोरंजन प्रतिभा के भूप,
 विमल मति पावन परम अनूप,
 कीजिये भ्रातृ प्रेम विस्तार ॥३॥ देश०

लीजिये ब्रह्मचर्य का नेम,
 पालिये अखिल विश्व का प्रेम,
 परस्पर होवे जिससे क्षेम,
 कीजिये हिन्दी सत्य प्रचार ॥४॥ देश०

देश के कोमल-हृदय कुमार,
 सरल सहृदयता के अवतार ।
 तुम्हीं हो ऋषियों की सन्तान,
 आय्य जन जीवन धन अरु प्राण
 भारती गुण गौरव अभिमान,
 कीजिये मातृभूमि उद्धार ॥५॥ देश०

प्रेमकली

गोपनीय रस रहै पुरातन प्रथा भली है ।
याही सों अधखिली रही यह प्रेमकली है ।

११-८-६५ वि०

सत्यनारायण

प्रेमकली

मंजु मनोरम मधुर सरस सुठि रस-कुसुमाकर ।
‘प्रेम’ सबद अति अद्भुत अमल अलौकिक आखर ।
करत रुचिर रचना विरंचि जिनकी सुखकारी ।
भये होंयगे अवसि परम कृतकृत्य सुखारी ।
अगम अगाध अपार सबदमय पारावार ।
मनु मथि जग हित सुधा कलस विधि सद्य निकारा ।
वसीकरन मुदभरन ओघ अघ दरन सदा के ।
अकथित अमित प्रभावभरे मनु मन्तर बाँके ।
कै साहित्य-रतन-गरभा के उर उजियारे ।
निरत जतन करि सुबरन दोऊ रतन निकारे ।
खरी खिली कै उर उपवन में अति अलबेली ।
सुरभित सुख-प्रद सरस चुभीली चारु चमेली ।
किधौ प्रकास प्रकास-थम्भ को ललाम अविचल ।
जगत उदधि मधि भ्रमत पोत-मन विसराम स्थल ।
कै ग्रीसम त्रयताप प्रबल परिताप नसावन ।
ललित कलित कसमीर सैल सुखमा सरसावन ।
किधौ भेद-पापान-भेदि नित द्रवत सुधा कौं ।
बहति हिलोरति बोरति सुरसरि हिय बसुधा कौं ।
जगत हृदय तरु विमल बड़ावन किधौ निकाई ।
ललकि लहलही ललित लता लौनी लिपटाई ।

मिलनि सतपुरा बिछुरनि बिन्ध्याचल मधि सोहति ।
 नेह-निरमदा नदि निरमल चलिकै मन मोहति* ।
 भक्ति पीन हरिभक्त मीन जीवन हित जीवन ।
 स्वाँति बिन्दु कै बिरह बिथित जन पपियन पीवन ।
 किधौ बिरच-वन माली लहि उर लहरि रसाला ।
 प्रेम-तार निरमयो गुहन मन सुमननु माला ।
 सतत अपरिमित गुन-गन पूरित प्रेम प्रथाएँ ।
 सकत न जाकी थाइ नेम परिमित गुन थाएँ ।
 रस रतनाकर प्रेम रतन मन जवाहिँ समाये ।
 वनत लाज कुल कान काँच करसौँ छिटकाये ।
 मंजुल उर नभ होत प्रेम मय मित्र प्रकासा ।
 बिलसत लखि नहिँ परत नियम खद्योत विकासा ।
 जा सन उत्तेजित ह्वै नर स्वधर्म अनुरागत ।
 नित स्वदेश हित प्रमुदित निज तन तृन सम त्यागत ।
 उदाहरन बहु मिलत अनुकरन जोग करन के ।
 निरखहु नयन उचारि चरित वर वरन वरन के ।
 जा बस निरगुन निराकार अज अलख निरंजन ।
 वनत सगुन साकार करत निज जन मनरंजन ।
 त्रिविध ताप बहु विथा भरयो जग लवन समुद सम ।
 तास उपर गत प्रेम मधुर जल स्रोत अनूपम ।

* अथवा—बिन्ध्य बिरह सतपुरा असाहस गिरि मधि सोहत ।
 नेह निरमदा नद निरमल सुर मुनि मन मोहत ॥

प्रेमकली

हृदय पटल सों उमगि-उमगि नित आपुहिं आपा ।
 परम प्रफुल्लित करत हरत भव-भय-सन्तापा ।
 हरि-रति-रस सरबस जिनकी नस-नस में व्यापक ।
 सो दुरमति गति लोपी गोपी प्रेमाध्यापक ।
 कोऊ बौरा कहत मगन मन प्रेमी जनकों ।
 अहो भाग्य जो लहत प्रेम मय बौरापन कों ।
 जासु पाइ परसाद लहत जीवन फल नीके ।
 चाखत अनुपम अमित स्वाद आनन्द अमी के ।
 वरबस खैंचत जगत मनहिं जो नित मटकीलौ ।
 जगत चित्त चुम्बक सनेह चुम्बक चटकीलौ* ।
 अति करकम अति कठिन लोह मन कैसोउ दरसै ।
 सहजहिं मुवग्न होत प्रेम पारस के परसै ।
 होत न शोभा कतहुँ नेह सों सूने उर की ।
 स्वीकृत होइ न सनद कवहुँ जो बिना मुहर की ।
 विविध भावना परिधि केन्द्र बस एक प्रेम है ।
 मिलत जहाँ सब आय निगत लुठि एक नेम है ।
 त्रय तापित उर लहलहात नन्दन सम सुन्दर ।
 प्रकृति धमुमती जबै अधिवसत प्रेम पुरन्दर ।
 निरत दिचारन जोग रुचिर उपदेस यही उर ।
 परमेसुर सब प्रेम प्रेममय नित परमेसुर ।

* अथवा—वरबस खैंचत जगत मनहिं जा चित्त पियारौ ।

जगत चित्त चुम्बक सनेह चुम्बक मतवारौ ॥

प्रकृति तामरस लसत विविध रस थलनि मनोहर ।
 परि अनुपम छवि धरत भरत जब प्रेम सरोवर ।
 अस्तु सकल संसार पदार्थ जहँ बहु दरसत ।
 वस्तु यही है जासों मन मनकों आकरसत ।
 त्रिभुवन पावन परम मञ्जु भावन सनेह रस ।
 विपुल भाँति के धरत आभरन स्वभावना बस ।
 करनफूल नथ खौरि आदि जिमि रूपक जानौ ।
 सब में सुवरन एक वरन मनहरन समानौ ।
 मणिमय दीपक दिव्य प्रभाकर परम सुहाई ।
 वरन वरन के कांच लेत पै तिहि अपनाई ।
 मन्द-मन्द ज्यों बहत पवन पावन मलयज कुल ।
 गहत सुवास कुवास परसि थल मञ्जु अमञ्जुल ।
 अटल छटा परिपूर्ण पटल को पुहुप पियारौ ।
 पै कंटक बस गहन अकंटक नाहिं सुखारौ ।
 प्रेम परम सुख सरस सुखद सुखमामय पग-पग ।
 पै कराल करवाल धार सम सहज प्रेम मग ।
 प्रेम उरु प्रन सम्बन्ध परसपर आनंद राँचौ ।
 होत न प्रन सों हीन कबहुँ जो प्रेमी साँचौ ।
 को लघु को दीर्घ प्रेमिनु में रहत निरन्तर ।
 प्रेम परन अन्तर सौं लखियत तिनको अन्तर ।
 नेह बसत उर, नसत सकल मल मोह बिताना ।
 पिघल जात पापान जीय नवनीत समाना ।
 करन प्रेम को बसीकरन अच्युत आराधन ।
 चाहियतु अविघन अबसि सघन साहस मय साधन ।

भुवन विदित अभिराम अचल निष्काम तासु गति ।
 प्रथित पुरातन प्रचुर पुण्यमय प्रिय प्रन कीरति ।
 बरु तन सुन्दर सगुन सरल सब भाँति अनूनौ ।
 दीप-सिखा सम करत प्रकास न सनेह सूनौ ।
 ज्यों-ज्यों अबिकल तपत जपत प्रिय गुन पल-पल में ।
 त्यों-त्यों निखरत सनेह सुधरन विरह अनल में ।
 प्रेम-पयोनिधि धसि अवगाहत हिय हरमावै ।
 किन्तु विरह-बढ़वानल सौँ अति सो धवगावै ।
 कहन सहज परि गहन प्रेम-पथ निवहन सहज न ।
 भ्रमत भरति जग विषम विषय विष भाँड मनुज मन ।
 वँटत जहाँ मन विविध विषय सन मुनियनु गाई ।
 यह स्वाभाविक बात परति सब में कठिनाई ।
 सहज सरल यह सुलभ सत्य नहिं दुरथो काहु मन ।
 फिर क्यों कवियनु कियो विश्वास्य या को बरनन ।
 साँची कहनावति “जाकै नहिं फटे विबाई ।
 समझ सकत सो कैसे कहिए पीर पराई” ।
 प्रेम योग को होत जवै कलु काल व्यतिक्रम ।
 डूबत विकल वियोग बावरी जन मन संभ्रम ।
 जब साधारन कारन जग जन मत श्रम पाई ।
 कहा आचरज परै प्रेम पथ में कठिनाई ।
 कहौ कहाँ को न्याउ निरन्तर अन्तर करिवौ ।
 जहाँ कठिनता परै तासु मग पाँउ न धरिवौ ।
 विपुल दूर सौँ परमानत अस कायरताई ।
 “अपने मुख में ग्रास बिना कर उठे न जाई” ।

जासौं अभिमत मिलै अवसि चाहियतु सो धारौ ।
 स्वयं मनुज निज भाग अभाग सँवारन हारौ ।
 वरु जहाज डिंगिमिगे बात बस विचलन छिन कों ।
 लखियत नित ध्रुव भास सुई उत्तर दच्छिन कों ।
 तथा जगत व्यवहार करत लहि बिथा भकोरे ।
 प्रेम दिसा सौं निरत निरन्तर मनहिं न मोरे ।
 दुविधा हू में नित चाहियतु सनेह प्रानी में ।
 तजत न निजगुन इकछिन ज्यों चक्रमक पानी में ।
 प्रेम देव हू यदि उमंग में अपु चितु लावैं ।
 निज गुन पारावार बरनि तउ पार न पावैं ।
 खिलत अमल कल कमलकली सु-पराग नसतु है ।
 पुनि ता हित अनुराग अली-उर नाहिं बसतु है ।
 प्रेम-पुहुप उधरत प्रियतम रज रहत पराने ।
 मोद भरत आदरत न तिहि रस-भेद-सगाने ।
 नेह निकाई अप्रगट रस महिमा अधिकहि ।
 जग जिय भाई कवियनु गुनियनु मुनिमन भाई ।
 उठति भायना विविध धानूपम जिन रुचिराई ।
 को नर ऐसा अधम सके जो तिन विमराई ।
 अमित राग अनुराग कला कविता मनमोहनि ।
 लहरि उठति स्वच्छन्द सुखद सुन्दर सुठि सोहनि ।
 नैननि भरि इक बेर जबै कहूँ लखत सनेही ।
 हात प्रफुल्लित राम-राम आनंद सों देही ।
 सहस नैन हूँ लखत तऊ नित दरसन भूखे ।
 बेन-सुधा-सर न्हात गात तउ लागत सूखे ।

प्रेमकली

जो आँखिन की ओट कहूँ ह्वे जाय पियारौ ।
 ब्यापति नस-नस बिरह बनत तन सुधि मतवारौ ।
 दिव्य प्रभा पूरन पल-पल चंचल नभ तारे ।
 निकसत चमकत दुरत कबहु करि निज उजियारे ।
 चारु चाँदनी बिलसति में उमगति नित छाती ।
 लसत नखत नभ जनु प्रिय पाती तन पुलकाती ।
 चहचहात पंछीगन जनु कोउ राग अलापत ।
 सनसनात चलि पवन मनहु प्रियतम सुधि लावत ।
 सुनत कान दे ताहि जानि सन्देश सुश्रवण ।
 पठवत कबहुँ मराल मधुप धाराधर धावन ।
 तरु तन लगि अलबेलि बेलि लचि-लचि लहराती ।
 विरही दुख सों दुखी मनहु विह्वल बिलखाती ।
 गिरत सुमन गन कबहुँ पवन सन सुन्दर दरसत ।
 लसत यही जनु अश्रु विन्दु तिन कर बहु बरसत ।
 जे असोक के बिटप लगत तेऊ सोकाकुल ।
 मन्तापित तन लखियत सकल चराचर को कुल ।
 आँखिन जगत की जननि प्रकृति दारुण दुख छैनी ।
 नाना दृश्य दिखाइ देति धीरज सुख ऐनी ।
 सकल विश्व आमाँद पुंज उर कुंज पूर्ण भरि ।
 बिरह जनित जो कष्ट तासु तुलना न सकै करि ।
 कठिन लभ्य आनन्दकन्द इक आँर प्रेम पद ।
 अपर आँर अति सहज स्वार्थ मग मदमय दुखप्रद ।
 खुले जुगल मग चलौ चलावहु जहँ जिय भावै ।
 निज-निज रुचि अनुसार जीव जग सुख-दुख पावै ।

चित्र विचित्र पवित्र प्रेम प्रन कर मन भावन ।
 सुनत परम रस ऐन बैन पपिया के पावन ।
 तृन समूह नहिं गिनत सकल निज तन मन धन है ।
 पूरन प्रेमी परमासय पपिया को प्रन है ।
 प्रेम प्रथा अनुकरन जोग थिर चित चातक की ।
 जिहि सुनि छाती परै न तन प्रवसन पातक की ।
 कैसो जाकर अहा अटल अविचल अद्भुत प्रन ।
 भरे सरित सर समुद्र तऊ नित यांचत जो धन ।
 भूरि उपल वरु परहि धूरि उड़ियत पांखन की ।
 तव हू निहचल चाह चित्त स्वाँती चाखन की ।
 पूरन प्रेमिनि मीन जगत जाकी रति जानी ।
 प्रानहीन, पै उर रस प्रीति न तामु सिरानी ।
 विसम विसैलो जव रिस करि निज डाँकहि मारे ।
 परम कठिन सों कठिन सहज ही दारु विदारै ।
 साँ पटपट गदगद उर निरविस सरम सदाँही ।
 मुदित पदम मुख कढ़ि न सकै गुंजत तिहि माँही ।
 निरख्यो प्रेम प्रभाव पूरि रह्यो जग जीवन में ।
 लगु जासौ मन मन्द सुरस छकि छकि पीवन में ।
 यही जगत में जनम धरन का सुन्दर फल है ।
 जा बिन जीवन धरम करम चतुरई विफल है ।
 यह जग के कछु अपढ़ पसुन की प्रम कहानी ।
 मोद मई छवि छई प्रगट नहिं जाइ बखानी ।
 जहँ विसेस विद्वान सभ्य नर जाति सुहावन ।
 प्रेम-प्रथा विस्तरित विमल चाहियत तहँ पावन ।

विषम विषय विष सरिस कठिन हिम रासि सताये ।
 रहत न प्रेम प्रसून प्रफुल्लित बिन कुम्हिलाये ।
 करत संग पय जलहि, रंग निज दिय रस भीनौ ।
 बारि बारि निज तन सनेह को परिचय दीनौ ।
 “मैं तैं” सों मुख मोरि नेह निधि जब अस पावै ।
 को नर एसो उदासीन जा नहिं हुलसावै ।
 यदि कोउ चाहत निरमल नेह रसायन पारौ ।
 बिरह ताप सों जात चपल चित पारद मारौ ।
 प्रगट वननातीत सकल जग जीय समानी ।
 प्रीति रहस रसरीति मूर परतीति प्रमानी ।
 जहाँ पुहुप की बास तहाँ मधुकर गुञ्जारै ।
 जहाँ प्रेम रस आस रसिक अपु तहाँ पधारै ।
 घुरत घुरत जब जुग मन गुन काँ गाँठ हिरावै ।
 अद्वितीय सुखप्रद सुभाव सो प्रेम सुहावै ।
 जवै हृदय में प्रेम चाट चटपटी जगति है ।
 तजति भजति उर आँठ बार ना तनक लगति है ।
 श्रम औ निज कर्त्तव्य धार मुद मंगल देनी ।
 जब सनेह सरसुती मिलत तब बहत त्रिवेनी ।
 यही कसौटी बिस्व माँहि जन मनहि कसन की ।
 यह ही साँची वस्तु आत्मबल दैन असन की ।
 जगत मनहि बांधन हित यह ही नरम शृङ्खला ।
 यही मदन-माँहन मोहन की सोहन सु-कला ।
 यह आकरसनि सकति भगति जो कोऊ धारै ।
 निज नैनन सों स्वयं ब्रह्मपद पदम निहारै ।

चित्र विचित्र पवित्र प्रेम प्रन कर मन भावन ।
 सुनत परम रस ऐन बैन पपिया के पावन ।
 तृन समूह नहिं गिनत सकल निज तन मन धन है ।
 पूरन प्रेमी परमासय पपिया को प्रन है ।
 प्रेम प्रथा अनुकरन जोग थिर चित चातक की ।
 जिहि सुनि छाती परै न तन प्रवसन पातक की ।
 कैसो जाकर अहा अटल अविचल अद्भुत प्रन ।
 भरे सरित सर समुद्र तऊ नित यांचत जो घन ।
 भूरि उपल वरु परहि धूरि उड़ियत पांखन की ।
 तव हू निहचल चाह चित्त स्वाँती चाखन की ।
 पूरन प्रेमिनि मीन जगत जाकी रति जानी ।
 प्रानहीन, पै उर रस प्रीति न तासु सिरानी ।
 विसम विसेलो जव रिस करि निज डाँकहि मारै ।
 परम कठिन सों कठिन सहज ही दारु बिदारै ।
 सो पटपट गदगद उर निरविस सरम सदाँही ।
 मुदित पदम मुख कढ़ि न सकै गुंजत तिहि माँही ।
 निरख्यो प्रेम प्रभाव पूरि रह्यो जग जीवन में ।
 लगु जासौ मन मन्द सुरस छकि छकि पीवन में ।
 यही जगत में जनम धरन का सुन्दर फल है ।
 जा दिन जीवन धरम करम चतुरई विफल है ।
 यह जग के कछु अपढ़ पसुन की प्रम कहानी ।
 मोद मई छवि छई प्रगट नहिं जाइ बखानी ।
 जहँ विसेस विद्वान सभ्य नर जाति सुहावन ।
 प्रेम-प्रथा विस्तरित विमल चाहियत तहँ पावन ।

विषम विषय विष सरिस कठिन हिम रासि सताये ।
 रहत न प्रेम प्रसून प्रफुल्लित बिन कुम्हिलाये ।
 करत संग पय जलहि, रंग निज दिय रस भीनौ ।
 बारि बारि निज तन सनेह को परिचय दीनौ ।
 “मैं तैं” सों मुख मोरि नेह निधि जब अस पावै ।
 को नर ऐसो उदासीन जा नहिं हुलसावै ।
 यदि कोउ चाहत निरमल नेह रसायन पारौ ।
 बिरह ताप सों जात चपल चित पारद मारौ ।
 प्रगट वननातीत सकल जग जीय समानी ।
 प्रीति रहस रसरीति मूर परतीति प्रमानी ।
 जहाँ पुहुप की बास तहाँ मधुकर गुञ्जारै ।
 जहाँ प्रेम रस आस रसिक अपु तहाँ पधारै ।
 घुरत घुरत जब जुग मन गुन को गाँठ हिरावै ।
 अद्वितीय सुखप्रद सुभाव सो प्रेम सुहावै ।
 जवै हृदय में प्रेम चाट चटपटी जगति है ।
 तजति भजति उर आँट बार ना तनक लगति है ।
 श्रम औ निज कर्त्तव्य धार मुद मंगल देनी ।
 जब सनेह सरसुती मिलत तब बहत त्रिवेनी ।
 यही कसौटी बिस्व मांहि जन मनहि कसन की ।
 यह ही साँची वस्तु आत्मबल दैन असन की ।
 जगत मनहि बांधन हित यह ही नरम शृङ्खला ।
 यही मदन-माहन मोहन की सोहन सु-कला ।
 यह आकरसनि सकति भगति जो कोऊ धारै ।
 निज नैनन सों स्वयं ब्रह्मपद पदम निहारै ।

रस सरसावत छवि दरसावत हिय हरसावत ।
 वर विनोद बरसावत प्रियतम पद परसावत ।
 सुलभ सफलता द्वार देस सेवक गुनियनि कों ।
 सुधाधार साहित्य मधु-व्रत सत कवियनि कों ।
 विरह ताप संतापित जन कों सुखद रसायन ।
 हार मन को सहसबाहु साहस बरदायन ।
 अटल मुक्ति सोपान मोक्ष के अभिलासी कों ।
 अभिमत सुफल प्रदान जनम के हत आसी कों ।
 मुनियनि कों पद पद सुख प्रद वर बिसद बिरागा ।
 हरिजन पदपद कों श्रोपति पद पदम परागा ।
 अगम अनिरवचनीय परे जासों कछु बस ना ।
 वरनत रस रमनीय रहत रसना में रस ना ।
 अचला अवसि रतनगर्भा वसुमती सुहावति ।
 किन्तु प्रेम रस रती धारि यह रसा कहावति ।
 प्रीति रहस रस रीति जगत जा उर न भरेगी ।
 तरसावत मन रसा रसातल गवन करेगी ।
 सहज नहीं कछु काज नेह जलनिधि अवगाहन ।
 थाह लेन जो गये मिली जग तिनकी थाह न ।
 जड़ जंगम जग जीव जाहि निज निज उर जानत ।
 एक यही आचरज सकत नहिं ताहि बखानत ।
 जानत सब कछु प्रेम-स्वाद मुख बरनि न आवत ।
 यदपि परम वाचाल मूक बनि भाव जनावत ।
 विद्या बस तत्त्वानि के भेद प्रभेद बताये ।
 गूँगे कों गुर खाय जगत बैद्यो सिर नाये ।

प्रेमकली

देखहु दे मन करि उमंग उपदेस असेसनि ।
मनन करहु विद्वान-विपुल-उज्जल उपदेसनि ।
उलटा पलटी करहु निखिल जग की सब भाषा ।
मिलहि न परि कहूँ एक “प्रेम” पूरी परिभाषा ।
स्वयं सिखाय न सकै सारदा यार्की पाटी ।
परम बिलच्छन स्वच्छ प्रेम पूरित परिपाटी ।
गोपनीय रस रहै पुरातन प्रथा भली है ।
याही सों अधखिली रही यह प्रेम कली है ॥

तन्मयता सुख

जब ध्यान में तन्मय होत, स्वकल्पित तासु स्वरूप ही दीसि परे ।
विरहा की दशा हूँ मैं धीरज द इमि प्यारा सदा दुख दूरि करे ।
भ्रम नष्ट भये पै कछू न कछू बन जीरन का जग रूप धरे ।
घबराइ महा बिलखै दुखिया जिय मानौ तुसानल माहि जरे ॥

—उत्तर रामचरित्र

जिय मेल

यह गूढ़ सुभाउ का कारन कोउ सबै जग में जिय मेल मिलावै ।
नहिं निभर सुन्दर रंग औ रूप पै प्रेम-प्रथा निहचे मन आवै ।
लखि मित्र पवित्र सरोरुह हीय प्रफुल्लित प्यारी छटा सरसावै ।
अरु चन्द्र के हांत उदोत द्रवै नित चन्दरकान्तमनी चितभावै ॥

—उत्तर रामचरित्र

सज्जन-प्रेम

सुख दुख में नित एक, हृदय को प्रिय विराम थल ।
सब विधि सों अनुकूल, विसद लच्छन मय अविचल ।
जासु सरसता सकै न हरि, कबहूँ जरठाई ।
ज्यों ज्यों बाढ़त सघन, सघन सुन्दर सुखदाई ।
जो अवसर पै संकोच तजि, परनत दृढ़ अनुराग सत ।
जग दुरलभ सज्जन-प्रेम अस बड़भागी कोऊ लहत ॥

—उत्तर रामचरित्र



अमर-दूत

भ्रमर-दूत

श्री राधा-वर निजजन -- बाधा — सकल — नसावन ।
जाकौ ब्रज मनभावन, जो ब्रज को मनभावन ।
रसिक-सिरोमनि मन हरन, निरमल नेह निकुंज ।
मोद भरन उर सुख करन, अविचल आनंद पुञ्ज
रंगीलो साँवरौ ॥ १

कंस-मारि भूभार-उतारन खल दल तारन ।
विस्तारन विज्ञान विमल श्रुति-सेतु-सँवारन ।
जन-मन-रंजन सोहना, गुन-आगर चितचोर ।
भवभय-भंजन मोहना, नागर नन्द-किसोर
गयो जब द्वारिका ॥ २

बिलखाती, सनेह पुलकाती, जसुमति माई ।
श्याम-विरह-अकुलाती, पाती कबहुँ न पाई ।
जिय प्रिय हरि-दरसन बिना, छिन छिन परम अधीर ।
सोचति मांचति निसि दिना, निसरत नैननु नीर
बिकल कल ना हिये ॥ ३

पावन सावन मास नई उनई घन पाँती ।
मुनि मन-भाई छई रसमई मञ्जुल काँती ।
सोहत सुन्दर चहुँ सजल, सरिता पोखर ताल ।
लोल लोल तहँ अति अमल दादुर बोल रसाल
छटा चूई परै ॥ ४

अलबेली कहुं बेलि, द्रुमन सों लिपटि सुहाई ।
 धोये धोये पातन की अनुपम कमनाई ।
 चातक चलि कोयल ललित बोलत मधुरे बोल ।
 कूकि कूकि केकी कलित, कुंजनु करत कलोल

निरखि घन की छटा ॥ ५

इन्द्रधनुष और इन्द्रबधूतिन की सुचि सोभा ।
 को जग जनम्यो मनुज, जासु मन निरखि न लोभा ।
 प्रिय पावन पावस लहरि, लहलहात चहुँ ओर ।
 छाई छवि छिति पै छहरि ताको ओर न छोरे

लसै मन मोहनी ॥ ६

कहूँ बालिका-पुंज कुंज लखि परियत पावन ।
 सुख-सरसावन सरल सुहावन हिय सरसावन ।
 कोकिल-कंठ-लजावनी, मनभावनी अपार ।
 भ्रातृ-प्रेम-सरसावनी, रागत मंजु मल्हार

हिंडोलनि भूलतीं ॥ ७

बालवृन्द हरसत उर-दरसत चहुँ चलि आवैं ।
 मधुर मधुर मुसकाइ रहस बतियाँ बतरावैं ।
 तरुवर डार हलावहीं, 'धौरी' 'धूमरि' टेरि ।
 सुन्दर राग अलापहीं, भौरा चकई फेरि

विविध क्रीड़ा करें ॥ ८

लखि यह सुखमा-जाल लाल-निज-बिन नँदरानी ।
 हरि सुधि उमड़ी घुमड़ी तन उर अति अकुलानी ।

सुधि बुधि तजि माथौ पकरि, करि करि सोच अपार ।

हृग जल मिस मानहुँ निकरि, बही बिरह की धार

कृष्ण रटना लगी ॥ ६

कृष्ण-विरह की बेलि नई ता उर हरियाई ।

सोचन अश्रु विमोचन दोउ दलबल अधिकाई ।

पाइ प्रेम रस बढ़ि गई, तन तरु लिपटी धाई ।

फैल फूटि चहुँघा छई, बिथा न बरनी जाई

अकथ ताकी कथा ॥ १०

कहति विकल मन महारि कहां हरि ढूँढ़न जाऊँ ।

कब गहि लालन ललकत-मन गहि हृदय लगाऊँ ।

सीरी कब छाती करों, कब सुत दरसन पाउँ ।

कबै मोद निज मन भरौं, किहि कर धाई पठाउँ

सँदेसो श्याम पै ॥ ११

पढ़ी न अक्षर एक, ज्ञान सपने ना पायो ।

दूध दही चारत में सबरो जनम गमायो ।

मातपिता बैरी भये, शिक्षा दई न मोहि ।

सबरे दिन योंही गये, कहा कहे तें होहि

मनहिं मन में रही ॥ १२

सुनी गरग सों अनुसूया की पुण्य कहानी ।

सीता सती पुनीता की सुठि कथा पुरानी ।

विषद-ब्रह्मविद्या-पगी मैत्रेयी तिय-रत्न ।

शास्त्र-पारगी गारगी, मन्दालसा सयन्न

पढ़ीं सब की सबै ॥ १३

निज निज जनम धरन को फल उनने ही पायो ।
 अविचल अभिमत सकल भाँति सुन्दर अपनायो ।
 उदाहरनि उज्जल दयो, जगकी तिथनि अनूप ।
 पावन जस दस-दिसि छयो, उनको सुकृति-सरूप

पाइ विद्या बलै ॥ १४

नारी-शिक्षा निरादरत जे लोग अनारी ।
 ते स्वदेस-अवनति प्रचंड-पातक अधिकारी ।
 निरखि हाल मेरो प्रथम, लेउ समुझि सब कोइ ।
 विद्या-बल लहि मति परम अबला सबला होइ

लग्यौ अजमाइ के ॥ १५

कौनै भेजौ दूत, पूत सों बिथा सुनावै ।
 बातन में बहलाइ जाइ ताको यहाँ लावै ।
 त्याग मधुपुरी मों गयो, छौँड़ि सवन को साथ ।
 सात समुन्दर पै भयो, दूरि द्वारिकानाथ

जाइगो को उहाँ ॥ १६

नास जाइ अकूर कूर तेरो बजमारे ।
 बातन में दै सबनि लैगयो प्रान हमारे ।
 क्यों न दिखावत लाइ कोउ, सूरति ललित ललाम ।
 कहँ मूरति रमनीय दोउ, श्याम और बलराम

रही अकुलाइ मैं ॥ १७

अति उदास, बिन आस, सबै-तन-सुरति भुलानी ।
 पूत प्रेम सों भरी परम दरसन ललचानी ।

विलपति कलपति अति जबे, लखि जननी निज श्याम ।
भगत भगत आये तबै, भाये मन अभिराम

भ्रमर के रूप में ॥ १८

ठिठक्यो, अटक्यो भ्रमर, देखि जसुमति महारानी ।
निज-दुख-सों अति-दुखी ताहि मन में अनुमानी ।
तिहि दिसि चितवत चकित-चित, सजल जुगल भरि नैन ।
हरि-वियोग-कातर अमित, आरत गद-गद बैन

कहन तासों लगी ॥ १९

तेरो तन घनश्याम श्याम घनश्याम उतें सुनि ।
तेरी गुंजन सुरलि मधुप. उत मधुर मुरलि धुनि ।
पीत रेख तव कटि बसत, उत पीताम्बर चारु ।
विपिन-बिहारी दोउ लसत, एक रूप सिंगार

जुगल रस के चखा ॥ २०

‘याही कारन निज प्यारे ढिंग तोहि पठाऊँ ।
कहियो वासां विश्वा सबै जो अबै सुनाऊँ ।
जैयो पटपद धाय कें, करि निज कृपा बिसेस ।
लैयो काज बनाय कें, दै मो यह सन्देश
सिदोसौ लौटियो ॥ २१

‘जननी-जन्मभूमि सुनियत स्वर्गहु सों प्यारी ।
सो तजि सबरो मोह सांवरे तुमनि बिसारी ।
का तुम्हरी गति मति भई, जो ऐसो बरताव ।
किधौ नीति बदली नई, ताको पर्यौ प्रभाव
कुटिल विष को भर्यौ ॥ २२

‘माखन कर पौछन सों चिक्कन चारु सुहावत ।
निधुबन श्याम तमाल रह्यो जो हिय हरसावत ।
लागत ताके लखन सों, मति. चलि वाकी ओर ।
बात लगावत सखन सों आवत नन्द-किशोर

कितहुँ सों भाजिकें ॥ २३

‘बुही कलिन्दी-कूल कदम्बन के बन छाये ।
*बरन बरन के लता-भवन मन हरन सुहाये ।
बुही कुन्द की कुंज ये, परम-प्रमोद समाज ।
पै मुकुन्द बिन बिस-मये, सारे सुखमा साज

चित्त वां ही धर्यौ ॥ २४

‘लगत पलास उदास. शोक में अशोक भारी ।
बौरै बने रसाल, माधवी लता दुखारी ।
तजि तजि नित प्रफुलित पनौ, बिरह-विथित अकुलात ।
जड़ हू है चेतन मनौ, दीन मलीन लखात

एक माधौ बिना ॥ २५

‘नित नूतन तृन् डारि सघन वंसीबट छैयां ।
फेरि-फेरि कर-कमल, चराई जो हरि गैयां ।
ते तित सुधि अति ही करत, सब तन रहीं भुराय ।
नयन स्रवत जल, नहिं चरत, व्याकुल उदर अघाय

उठाये म्हाँ फिरैं ॥ २६

* अथवा भूमत लतिका भवन बने बहु बरन सुहाये ।

‘बचन-हीन ये दीन गरु दुख सों दिन बितवत ।
 दरस-लालसा लगी चकित-चित इत-उत चितवत ।
 एक संग तिनकों तजत, अलि कहियो, ए लाल ।
 क्यों न हीय निज तुम लजत, जग कहाय गोपाल
 मांह ऐसो तज्यो ॥ २७

‘नील-कमल-दल-श्याम जासु तन सुन्दर सोहै ।
 नीलाम्बर वसनाभिराम विद्युत मन मोहै ।
 भ्रममें परि घनश्याम के, लखि घनश्याम अगार ।
 नाचि नाचि ब्रजधाम के, कूकत मोर अपार
 भरे आनन्द में ॥ २८

‘यहँ को नव नवनीत मिल्यो मिसरी अति उत्तम ।
 भला सके मिलि कहाँ शहर में सद या के सम ।
 रहै यही लालो अजहुँ, काहुँति यहि जब भोर ।
 भूखो रहत न होइ कहूँ, मेरो माखन-चोर
 वँध्यो निज देव को ॥ २९

‘वा बिनु को ग्वालनु को हित की धात सुभावै ।
 अरु स्वतंत्रता, समता, सहभ्रातृता सिखावै ।
 यदपि सकल विधि ये सहत, दारुण अत्याचार ।
 पै न कछू मुख सों कहत, कोरे बने गँवार
 कोउ अगुआ नहीं ॥ ३०

‘भये संकुचित-हृदय भीरु अब ऐसे भय में ।*
 काऊ को विश्वास न निज-जातीय-उदय में ।

* अथवा—आतम-विस्मृत भये व्यक्तिगत-स्वार्थ हृदय में ।

लखियत कोउ रीति न भली, नहिं पूरव अनुराग ।

अपनी अपनी ढापुली, अपनो अपनो राग

अलापैं जोर सों ॥ ३१

‘नहिं देशीय भेष भावनु की आशा कोऊ ।

लखियत जो ब्रजभाषा, जाति हिरानी सोऊ ।

आस्तिक बुधि बन्धनन से, विगरीं सब मरजाद ।

सब काऊ के हिय बसे, न्यारे न्यारे स्वाद

अनोखे ढंग के ॥ ३२

‘वेलि नवेली अलवेली दोउ नम्र सुहावैं ।

तिनके कामल सरल भाव को सब यस गावैं ।

अवकी गोपी मदभरी, अवर चलै इतराय ।

चार दिना की छान्दरी, गई ऐसी गरवाय

जहाँ देखो तहाँ ॥ ३३

‘गोवरधन करं-कमल धारि जो इन्द्र लजायौ ।

तुम बिन मो तिह को बदलौ अव चहत चुकायौ ।

नहिं बरसावत सघन अव, नियम पूर्वक नीर ।

जासों गो-कुल हात सब, दिन दिन परम अधीर

न्यार सपनो भयो ॥ ३४

‘गोरी कों गोरे लागत जग अति ही प्यारे ।

मो कारी कों कारे तुम नयननु के तारे ।

उनको तो संसार है, मो दुखिया को कौन ।

कहिये, कहा विचार है, जो तुम साधी मौन

बने अपस्वार्थी ॥ ३५

‘पहले को सो अब न तिहारो यह वृन्दावन ।

या के चारों ओर भये बहुविधि परिवर्तन ।

बने खेत चौरस नये. काटि घने बन पुंज ।

देखन कों बस रहि गये, निधुवन सेवा-कुंज

कहां चरिहैं गऊ ॥ ३६

‘पहली सी नहिं या यमुना हू में गहराई ।

जल को थल, अरु थल को जल अब परत लखाई ।

कालीदह को ठौर जहँ चमकत उज्जल रेत ।

काछी माली करत तहँ, अपने अपने खेत

घिरे भाऊनि सों ॥ ३७

‘नित नव परत अकाल काल को चलत चक्र चहुँ ।

जीवन को आनन्द न देख्यो जात यहाँ कहूँ ।

बढ़यो यथेच्छाचार-कृत जहँ देखो तहँ राज ।

होत जात दुर्बल विकृत दिन दिन आर्यसमाज

दिनन के फेर सों ॥ ३८

‘जे तजि मातृभूमि सों ममता, होत प्रवासी ।

तिन्हें बिदेसी तंग करत दै विपदा खासी ।

नहिं आये—निरदय दई, आये—गौरव जाय ।

सांप छछूंदर गति भई, मन ही मन अकुलाय

रहे सब के सबै ॥ ३९

‘टिमिटिमाति जातीय-जोति जो दीप-शिखा सी ।
लगत बाहिरी व्यापि बुझन चाहत अबला सी ।
शेष न रह्यो सनेह को, काहू हिय में लेस ।
कासों कहिये गेह को देसहि में परदेस
भयो अब जानिये’ ॥ ४०

(अपूर्ण)



प्राकृतिक सौन्दर्य

वह मुरली अधरान की, वह चितवन की कोर ।
सघन कुंज की वह छटा, अरु वह जमुन हिलोर ॥
पीत पटी लिपटाय के, लै लकुटी अभिराम ।
बसहु मन्द मुसिक्याय उर, सगुण रूप घनश्याम ॥

कियौ गीत यह आज नाथ ! तेरे ही अरपन ।
तव गुण रज सों माँजि प्रकृति को साँचौ दरपन ॥

प्राकृतिक सौन्दर्य

प्रातः श्री

जय-जय जग आशरूप, ऊषे ! प्रतिभा अनूप ।
जागृतिमय पुण्य प्रभा प्रिय प्रकाशिनी ॥
सीतल सुरभित समीर सरल सुमति सुखद धीर ।
वर बहाय मृदुल -मृदुल मुद विकासिनी ॥
हृदय-कमल कोष अमल समुदित दल नवल-नवल ।
कोमल कर रुचिर खोलि रुचि विलासिनी ॥
द्विजगन करि-करि कलोल गावत स्रुति सुखद लोल ।
बोलति सुर सरस मनहुँ मञ्जु-भासिनी ॥
नवद्रुम पल्लव डुलाय सुमन-सुमन रज बिछाय ।
स्वागत तब रचति प्रकृति पुण्य-रासिनी ॥
मधुप चारु चरितवान विद्या - मधु करत पान ।
ठौर-ठौर गुञ्ज तिन त्रिताप-नासिनी ॥
आतम-विस्मृति कराल फैलत जब तिमिर जाल ।
करति ज्ञान -सूर्य -उदय जग विभासिनी ॥
सुबरन रंजित सुरंग रम्य परम प्रेम-संग ।
हिम अंचल सीस धारि सदभिलासिनी ॥
सहृदय सन्तापहारि भारत आरत निहारि ॥
ओस -अश्रु सजल जुगल दृग अकासिनी ।
अस सुर मुनि सुजन सेवि प्रातः श्री सत्यदेवि ।
दया द्रवित अति पुनीत हृदय-वासिनी ॥

बसन्त

मृदु मंजु रसाल मनोहर मंजरी मोर पखा सिर पे लहरैं ।
अलबेलि नबेलिन बेलिनु में नवजीवन ज्योति छटा छहरैं ॥
पिक भृंग सुगुंज सोई मुरली सरसों सुम पीतपटा फहरैं ।
रसवंत विनाद अनंत भरे ब्रजराज बसंत हिये बिहरैं ॥

ऋतुराज आज कैसा प्यारा बसन्त आया ।
जिसका प्रभाव पावन सारे जहाँ में छाया ॥
कैसे रसाल बौर मृदुमंजरी सजा के ।
फैली सुगन्ध सौंधी भौरों का मन लुभाया ॥
कलरव कलाप कोमल करती हैं कोकिलायें ।
अलिपुंज ने मनोहर निज गुंज गान गाया ॥
देखो विचित्र शोभा सरसों दिखा रही है ।
सुन्दर सुवर्ण रंजित क्या दृश्य जी को भाया ॥
फूले हैं द्रुम रंगीले लतिकायें लहलहातीं ।
सबने ही अपने-अपने उत्साह को दिखाया ॥
ऐसा सुराज पाके हे हिन्द के सपूतो ।
प्रफुलित हां काम कीजै प्रकृती ने यह बताया ॥
भारत बसुन्धरा का गौरव जो गिर रहा है ।
यदि चाहते हो प्यारे फिर से उसे उठाया—
तो पुत्र पुत्रियों को शिक्षा अभी से दीजै ।
है सत्य मंत्र ये ही ऋषियों ने जो सिखाया ॥

बसन्त-स्वागत

जय बसन्त रसवन्त सकल-सुख-सदन सुहावन ।
 मुनि-मन-मोहन भुवन तीन जिय-प्रेम गुहावन ।
 जय सुन्दर-स्वच्छन्द-भाव-मय हिय प्रति परसन ।
 जय नन्दन-वन-सुरभित-सुखद-समीरन सरसन ।
 जय मधुमाते मधुप भीर को चहुँ दिसि छोरन ।
 ललित लतान बितानन में दुति दलहिं बियोरन ।
 जय अनूप आनन्द अमित अति अटल प्रदरसन ।
 जय रस रंग-तरंग बेलि अलबेलिन बरसन ।
 करिवे स्वागत आप हरन-त्रयताप सकल थल ।
 जड़ जंगम जग-जीव जनौ जाग्यौ जोवन-जल ॥१०

जो तरु बिथित-वियोग सदां दरसन तव चाहत ।
 नौचि नौचि कच-पातनि अश्रु प्रवाह प्रवाहत ।
 देखहु किशलय नहीं, आंखि अति अरुण भई-तिन ।
 रोवत रोवत हाय ! थके, अब डेर सुनौ किन ?
 तुम्हरी दिसिहि निहारि पुलकि तन, पात हिलावत ।
 करसों मानहुं मिलन तुमहिं निज ओर बुलावत ।
 बौरे नहीं रसाल बने बौरे तव कारन ।
 बलिहारी तव नेह-नियम निठुराई धारन !
 तुम सौ कठिन कठोर और जग दूसर दीख न ।
 सांचो किय निज नाम “पञ्चशर को शर तीखन” !२०

तौ हू मृदुल स्वभाव धारि जो प्रेमिन भावत ।
 करनौ वाकी ओर जाहि सों प्रेम लगावत ।

लखि तुम्हरे पद-कञ्ज रञ्ज सब भूलि भूलि तन ।
साजि साजि सँग ललित लहलही लौनी लतिकन ।
भाँति भाँति के बिटप-पटनि सजि वे ही आवत ।
कोऊ फल कोउ फूल मुदित मन भेटहि लावत ।
“जयति” परसपर कहत पसारत आपनि डारन ।
मनहु मन्त मन मिलन मित्र कर कर गर डारन ।
आवहु आवहु वेगि अहो ऋतुगन के नरपति ।
तरुवृन्दनि को लखहु आप शोभा की सम्पति ॥३०

वह देखौ नव कली भली निज मुखहि निकारति ।
लगि लगि वात-प्रभात गात अलसात सम्हारति ।
प्रथम समागम-समर जीति मुख मुदित दिखावति ।
लहकि लहकि जनु स्वाद लेन को भाव बतावति ।
मुखहि मोरि जुमहाति भरी तन अतन-उमंगन ।
जाम-जुवानी जगे चहत रस-रंग-तरंगन ।
वह देखौ अलि पुञ्ज कली-कल-कुञ्ज गुँजारत ।
मानहु मोहन मनहि मदन को मन्त्र उचारत ।
ठौर ठौर मधु-अन्ध भयौ वह देखौ भूमत ।
कवहूँ जापर वापर यों सब ही पर घूमत ॥४०

सुन्यौ प्रथम रस रास रच्यो श्रीपति, हम कानन ।
गूँज्यो वृन्दाबिपिन मुरलिधर-मुरली तानन ।
वह देख्यौ हम आज रास-रस-रहस रंग मनु ।
मधुर ललित अति निपट प्रकृति को जो निभंग तनु ।
वित तो प्यारो कृष्ण, कृष्ण इत अली विराजत ।
पीत पटी वित कसी, पीत इत रेख सुभ्राजत ।

गोपिकानि के संग बितै बनवारी आवन ।
बनवारी नव कली संग इत पटपद-धावन ।
वित ब्रजवाला मृग-करनि मुरली ध्वनि सोहनि ।
इतहु नेह नद द्रवत अली गुञ्जार बिमोहनि ॥५०

जय पद पद पर परम प्राकृतिक प्रेमहि पीवन ।
जोवन ज्योति जगावन जय जीवन जग जीवन ।
फूलत कच-कचनार अपार अनार हजारन ।
किंशुक जाल तमाल विसाल रसाल-पसारन ।
वह देखौ कुल वकुल विरयो जा आकुल मधुपन ।
चारत चहुंघा चित्त निचारत चारु मधुरपन ।
कहूँ पटल के पुटुप चटकि चटकत चित चायन ।
बौर आनंद मनहुं प्रेम बारे मन भायन ।
जगत-जननि को महा अमंगल मूल नसावन ।
मानहुँ सब जग-बंदन बन्दनवार लजावन ॥६०

मुकुलित अम्ब कदम्ब कदम्बनि पै कल कूजत ।
“केहू केहू” मोर अलापत आशा पूजत ।
अवरेखहु निज स्वच्छ छटा जमुना जल कूलन ।
सटकि कुञ्ज बन सघन घटा नव फूले फूलन ।
दुम डारनि के बीच चपल-चहचही चुहूकनि ।
कोयल-कीर-कपोत-कलित कल कंठ कुहूकनि ।
मानहुँ करि श्रुति-पाठ धरम की ध्वजा उड़ावत ।
“हे भारत अब उठौ तजौ आलस” समभावत ।
ये सुबोल द्विज अपर डहडही डारन बोलत ।
करसायल मन-हरनि हिरनि संग इत उत डोलत ॥७०

दुबरी गहि मुख तृनहि सुरभि चहुँ दिसि जहँ जोवति ।
 श्री गोविन्द गुपाल कृष्ण सुधि करि जनु रोवति ।
 बछरा अलप अजान व्यार भरि थरकत-फरकत ।
 लभरत भिभकत विभुकत कुदकत फुँदकत बबकत ।
 देखहु यमुना पुर्लन सुभग शांभित रेती-छबि ।
 चिलकति भलकति मनहुँकान्ति प्रगटी खेती फबि ।
 किम्बा परम पवित्र रची वेदी मन भावनि ।
 तीन लोक छबि सची मनहुँ आनन्द दृढावनि ।
 ललकि हिलोरें खात कलिन्दी रस सरसावति ।
 नीलाम्बर तनु धारि कृष्ण मिलिवे जनु धावति ॥८०

भरे सरोवर स्वच्छ नील जल नलिन रहे खिलि ।
 सारस हंस चकोर घोर सब सोर करैं मिलि ।
 जुही गन्धि सों पुही चुई परिमल शुचि धावति ।
 पुहुप धूल धूसरित हीय सब सूल नसावति ।
 हरी घास सों घिरे तुंग टीले नभ चुम्बत ।
 तिन में सीधी सरल सरग दिसि डगर उलम्बत ।
 जब सों बहरैं लहरैं छहरैं तेरी समुदित ।
 बिन कारण नहिं ज्ञात आप आपहि सों प्रमुदित ।
 कोऊ सरसों सुमन फूल, जो सिर सों बांधत ।
 गरियारन गोरिन के संग काँउ चुहल मचावत ॥८१

कहुँ गँवार गम्भीर बसन्ती बसन रँगावत ।
 जो तव स्वच्छ स्वरूप सदा सबके मन भावत ।
 ऊधम उमड्यो परत रँग्यो जग तव रस रागत ।
 गारी पिचकारी तारिन सों तेरो स्वागत ।

प्राकृतिक सौन्दर्य

कोउ बाबरे भये गुलालहिं मगन उड़ावत ।
करि फगुवारन लाल गीत फागुन के गावत ।
हुरिहारनि की धूम और रंगरेलनि पेलनि ।
देखहु तिनकी अहा खेल खेलनि भकभेलनि ।
मोद उदधि की लहरि सबन उनमत्त बनावति ।
तोरि लाज कुल दृढ़ पुल कोंजनु उमगति आवति ॥१००

कवहुँ सीत भयभीत कवहुँ पावमहिं नचावत ।
ग्रीसम के गहि केस स्वेद उर में छलकावत ।
सीतल मन्द सुगन्ध सती नित वायु बहावत ।
याही सों तू सांच मांच "ऋतुराज" कहावत ।
भारत आरत तार्की करक करेजा करकत ।
पहुँच्यो दशा वसन्त कहाँ सो ररकत ररकत ।
ऋतु सुमौलिमनि अहो ! यहाँ के हरहु त्रितापन ।
प्रेम वन्त ! गुनवन्त ! करहु सुख-शान्ति सुथापन ।
हमहुँ एक गमार गाम-रस-पुलकित तन मन ।
जासों हमरो कह्यो सुन्यो छमियो सब भगवन ।
महिमा अपरम्पार पार को पावत पूरन ।
सत्य वर्ननातीत गीत तव करत सुपूरन ॥११२

ग्रीष्म-दुपहरिया

तैं मधु परनी के कहूँ पुञ्ज । साजि दल नवल नवल सों कुञ्ज ॥
वन शीतलता का ललचात । तहाँ देखो टिटीहरी जात ॥
अतसी गाड़र द्रुम-लूमि । भुके तट और रहे सरि चूमि ॥
पवई पर कों फेलाय । छाँह के लालच भाजी जाय ॥

दुबरी गहि मुख तृनहि सुरभि चहुँ दिसि जहँ जोवति ।
 श्री गोविन्द गुपाल कृष्ण सुधि करि जनु रोवति ।
 बछरा अलप अजान व्यार भरि थरकत-फरकत ।
 लभरत भिभकत विभुकत कृदकत फुँदकत बबकत ।
 देखहु यमुना पुर्लन सुभग शांभित रेती-छबि ।
 चिलकति भलकति मनहुँकान्ति प्रगटी खेती फबि ।
 किम्बा परम पवित्र रची वेदी मन भावनि ।
 तीन लोक छबि सची मनहु आनन्द ददावनि ।
 ललकि हिलारें खात कलिन्दी रस सरसावति ।
 नीलाम्बर तनु धारि कृष्ण मिलिवे जनु धावति ॥८०

भरे सरोवर स्वच्छ नील जल नलिन रहे खिलि ।
 सारस हंस चकोर घोर सब सोर करैं मिलि ।
 जुही गन्धि सों पुही चुई परिमल शुचि धावति ।
 पुहुप धूल धूसरित हीय सब सूल नसावति ।
 हरी घास सों घिरे तुंग टीले नभ चुम्बत ।
 तिन में सीधी सरल सरग दिसि डगर उलम्बत ।
 जब सों बहरैं लहरैं छहरैं तेरी समुदित ।
 बिन कारण नहिं ज्ञात आप आपहि सों प्रमुदित ।
 कोऊ सरसों सुमन फूल, जो सिर सों बांधत ।
 गरियारन गोरिन के संग कोउ चुहल मचावत ॥८१

कहुं गँवार गम्भीर बसन्ती बसन रँगावत ।
 जो तव स्वच्छ स्वरूप सदा सबके मन भावत ।
 ऊधम उमङ्ग्यो परत रँग्यो जग तव रस रागत ।
 गारी पिचकारी तारिन सों तेरो स्वागत ।

कोउ बाबरे भये गुलालहिं मगन उड़ावत ।
करि फगुवारन लाल गीत फागुन के गावत ।
हुरिहारनि की धूम और रंगरेलनि पेलनि ।
देखहु तिनकी अहा खेल खेलनि भकभेलनि ।
मोद उदधि की लहरि सबन उनमत्त बनावति ।
तोरि लाज कुल दृढ़ पुल कोंजनु उमगति आवति ॥१००

कबहुँ सीत भयभीत कबहुँ पावमहिं नचावत ।
ग्रीसम के गहि केस स्वेद उर में छलकावत ।
सीतल मन्द सुगन्ध सती नित वायु बहावत ।
याही सों तू सांच मांच “ऋतुराज” कहावत ।
भारत आगत ताकी करक करेजा करकत ।
पहुँच्यो दशा बमन्त कहां सो ररकत ररकत ।
ऋतु सुमोलिमनि अहो ! यहाँ के हरहु त्रितापन ।
रेम वन्त ! गुनवन्त ! करहु सुख-शान्ति सुथापन ।
हमहुँ एक गमार गाम-रस-पुलकित तन मन ।
जासों हमरो कह्यो सुन्यो छमियो सब भगवन् ।
महिमा अपरम्पार पार को पावत पूरन ।
सत्य वर्तनातीत गीत तव करत सुपूरन ॥११२

ग्रीष्म-दुपहरिया

लसै मधु परनी के कहुँ पुञ्ज । साजि दल नवल नवल सों कुञ्ज ॥
सघन शीतलता का ललचात । तहाँ देखो टिटीहरी जात ॥
कहूँ अतसी गाड़र द्रुम-लूमि । झुके तट आँर रहे सरि चूमि ॥
तहाँ पवई पर कों फेलाय । छाँह के लालच भाजी जाय ॥

जहाँ वंजुल की मंजुल बोल । हरी लहराइ रहीं अलबेलि ॥
वहीं सारस चकवन्तु के ठाम । पंख मुख ढाँकि करें विसराम ॥
कहूँ वीरुत-तरु पे धरि धाम । कलित कूँजें कपोत अभिराम ॥
करै नीचें तीतर-परिवार । 'पटीलो' शब्दनु की भनकार ॥७॥

—भवभूति

ग्रीष्म-गरिमा

कँपत चर अचर सकल लखि याहि, प्रभो परताप ताप के धाम ।
शीत-मद-हरन सरन-प्रद पाहि तिहारे चरण कमल परनाम ।
प्रेमबस प्राणिनु के पुलकाय, शिशिर के शीतहि दियो भगाय ।
हमारी करिकें परम सहाय, सतावत सोई तुम अब हाय !
सकल संसार विकल बेहाल, कष्ट कछु कहत न बनै असीम ।
सहन कर सकत न तुम्हरो ज्वाल, द्रवहु भूतेश भयंकर भीम ।
बिबस नर नारी चहुँ चिल्लात, जबै फटकारत भाँक विशाल ।
विकल बहु बिलपि-विलपि बिल्लात, "हाय यह स्वायें लेति कराल" ।
देखि तव दारुण दुपहर दर्श, छांह हू तकत छांह के हेत ।
हिय न आकर्षन कितहूँ, हर्ष लना बनिता कविता नहि देत ।
पसीना पौछत वारहिंवार, पसीजत तोऊ सारे अंग ।
कलित कुम्हिलात हियों को हार, उड़त सब मुखमण्डल को रंग ।
हरति तव ज्वाल रसा-रस आय, सरित सरवर सब सूखे जात ।
बात बस बारि बहत, भय पाय मनहुँ तिन थर-थर कँपत गात ।
तपनिसों सुधिवुधि तजि कहूँ जाय, मोर जब पैठत पाँख पसारि ।
दुरत ता नीचे विषधर आय, विकल प्राणनिकौ मोह बिसारि ।
धाम के मारे अति घवराय, फिरत मारे चहुँ जीवन काज ।
एक थल अपनो चैर बिहाय, नीर ढिंग पीवत मृग मृगराज ।

लार टपकति जा की अकुलात, स्वान अति हाँपत जीभ निकारि ।
 बिलाई कड़ि समीपसों जात, तऊ नहिं बोलत ताहि निहारि ।
 तरणि कौ तापत तरुण प्रताप, बिबस तरुणी गन तजि संकोच ।
 निबारति वसन आपसों आप, नहीं कुछ अनघेरिन कौ सोच ।
 उतसों इत, इतसों उत जात, निरखि निरसात सुहात न ठाम ।
 कृपा तो चिपचिपात सब गात, न पावत छिनक कहूँ विश्राम ।
 चूम मुख दिना गये द्वेचार, प्यार करि पावति परम प्रमोद ।
 मात सोइ तब बस सकल बिसार, उतारति निज बालक कों गोंद ।
 राह चलिबौ नहिं तनिक सुहाय, मचकि मसका तब मारें देत ।
 पथिक पंछी पादप तर धाय, लेत सीरक तब आवत चेत ।
 तपत रवि महस किरन विकराल, चील्ह चींहरत गगन मड़राय ।
 भभकि भुव उगिलत दावा ज्वाल, लूअ की लपट भकोरा खाय ।
 महिष सूकर गन तालन जाहिं, न्हात लोरन अति हिय हरमात ।
 कीच सनि मुदित महामन माहिं, मनहुँ तन लागि चन्दन सरसात ।
 जबै अटकत आपस में बंस, द्रोह दावानल पटकत आय ।
 खटकि चटकत करिवे निजध्वंस, नसत पलभर में बैर बिसाय ।
 सदाँ अपनी धुन में दरसाय, पायकें कहूँ जलाशय तीर ।
 उड़ति बैठति पुन उड़ि-उड़ि जाय, धिकल अति मधु माखन की भीर ।
 करति ना काकिल निज कल गान, भ्रमर गुंजन सो सूनी कुंज ।
 परत पद तर पजरत पाषान, जरत परसत पिपीलिका पुंज ।
 ताप बस ह्वे अत्यंत अधीर, कहूँ कुलिलत नहिं बछरा गाय ।
 द्रुमन तर पी प्याऊ कौ नीर, फिरत जिय-जरनि तऊ ना जाय ।
 रेत सों बाहिर भुरसत पाम, तजत डरपत छिन भर कों धाम ।
 प्रबल धमका की पारत घाम, परै छाती नहिं करिवे काम ।

निरुद्यम निस्सहाय अतिदीन, निबल सहि सकत न तेरी ज्वाल ।
 उपासे प्यासे बसन बिहीन, लगत जल प्राण तजत ततकाल ।
 मित्र कों तपत देखि असहाय, लुकन नीचे तुमसों डरि होय ।
 हिमालय हिम जब जाति पराय, जगत करुणा न तऊ तव जीय ।
 यदपि पीवत जन कृत्रिम तोय, प्यास प्रबला तौऊ नहि जाय ।
 कंठ की शीतलता गई खोय, रह्यो रसना में रस ना हाय ।
 करत छिरकाव न पूरत आस, गरम निकसत धरती सों भाप ।
 चमेली पटल पुहुप नित पास, तऊ तव अटल रूप सों ताप ।
 लगीं खस-टटियां छिरकी जात, खिचत खस पंखा तिनके संग ।
 नैक नौकर के भोखा खात, घुमत तुम वहाँ बड़े बेढंग ।
 कबहुँ चन्दन घिसि धारत अंग, करत सेवन उसीर करपूर ।
 बगीचन बागन घोटत भंग, तबहुँ नहि होय शान्ति भरपूर ।
 सेत कागरी पीरी अरु लाल, लाइ केँ तुम आँधी परचण्ड ।
 उखारत जर सों वृक्ष विशाल, गिरावत तिनको गर्व अखण्ड ।
 गगन में गगन रही अति छा़य, लखत नहि नील बरन आकास ।
 दुरत निकरत पुनि पुनि दुरिजाय, नखत दल करत न प्रबल प्रकाम ।
 सुधाकर सुधा करनि फैलाइ, करति कछु मटमैली सी जोति ।
 यदपि नैनन कों अति सुखदाइ, तऊ मनचीती तृप्ति न होति ।
 बल्लुक जब रजनी होत व्यतीत, अटनि पै लै सितार मिरदंग ।
 गवावत गावत सुन्दर गीत, भंग तऊ करत सबै तुम रंग ।
 स्वदेशी मलमल मल-मल धोय, संदली ताकों सुघर रँगाय ।
 पहरि ताकी धाँती तिय कोय, रमत परि तबहुँ न कष्ट नसाय ।
 उठें खटिया सों नित परभात, व्यारिहू सीरी-सीरी खात ।
 उमस सों तबहुँ सिर चकरात, सोचिये पढ़न लिखन फिर बात ।

प्राकृतिक सौन्दर्य

न भावत असन बसन बनबाग, अलप घर घरनी सों अनुराग।
खुले तव पाइ अनुग्रह भाग, कमायो सेतमेंत वैराग।
प्रफुल्लित सबरे आक जवास, जरे तन हरे-हरे पटसाज।
तुम्हें कुसुमाञ्जलि सहित हुलास, देत स्वीकार करौ महाराज।
विनय हमरी अब दोऊ कर जोरि, नाथ हम निरपराध निर्दोष।
सत्य पुनि कहत निहोरि-निहोरि, तजहु निज महाप्रलय कर रोष।
भेटि पावस सनेह सरसाउ, सघन घनश्याम छटा दरसाउ।
जगत कों जनि पेसां तरसाउ, सरस हिय रस बरसा बरसाउ ॥

घन विनय

घनश्याम रस बरसाना।

नूतन जलधर नयन सुखद तन रुचिर छटा दरसाना।
पुनि-पुनि परम पुनीत प्राकृतिक प्रेम प्रभा परसाना।
पुण्य पियासे कृषक हृदय में सुख तरंग सरसाना।
तरसा चुके इन्हें तुम इतना, अधिक न अब तरसाना ॥

पावस

१

बदरवा दल पुनि-पुनि घिरि आवैं।

जानि मनुज-कुल-हीन दशा कों नयन नीर टपकावैं।
जो ध्वनि करत बिथित ह्वे कबहूँ करुणा-रुदन सुनावैं।
निरख रुधिर रञ्जित बसुधा कों, विपुल हृदय बिलखावैं।
भये बाबरे से सुधि बुधि तजि नभ पथरा बरसावैं।
घन मुख शोक कालिमा छाई बिकल इतै उत धावैं।
भरे वायु के जार सोर में कैसो रोर मचावैं।
सत्य सहानुभूति जग जनसों जानि परै दरसावैं ॥

जे का पावस सरस सुहावनि ?

अमित अलौकिक है गति जाकी, कलु की कलु दरसावनि ।
 घर-घर वैर बदरिया छाई, ऐक्य दिनेश दुरावनि ।
 तृष्णा तरल तड़ित लपकति अति, भूपकति हिय डरपावनि ।
 निरुत्साह घन घोर नगारे, क्रोध अँधरिया छावनि ।
 जगदम्भी जुगुन् छिन भंगुर प्रभा प्रगटि चमकावनि ।
 चकित मृगी स्वदेश-बान्धव रति, नय गर्भित विडरावनि ।
 काम बूँद उपकार धरा पै, लहि पपरा विरचावनि ।
 उत्साहँकुर लहलहातु ना, स्वारथ सजल गिरावनि ।
 लोक वेद कुलराति कियारी, ताकों काटि बहावनि ।
 देश हितैपी हरी बनस्पति, ताहि सरोप सरावनि ।
 ललित तरुन तरु आकनि पौरुष, पात निपात करावनि ।
 छटपटाति खल आशा नदियनु, नित चढ़ाय घौरावनि ।
 उष्ण परोदय कसक पारि निज, जगति जाय घबरावनि ।
 नित विदेश व्यापार कलापी, कलुपित मन हरपावनि ।
 कूकत कोयल शिल्प चहूँघा, धीर न ताहि धरावनि ।
 बिना लाभ बकवादी दादुर, चहुँ टर टर टर्गवनि ।
 मधु-मुख उर-विष वीर बहूटी, भल-भल थलन दिग्वावनि ।
 कड़खा कड़े बचन गावन की, प्रथा पुञ्ज अधिकावनि ।
 कविता स्वांति पिपासा व्याकुल, कवि पपिया अकुलावनि ।
 दीन दशा कासों जिह कहियत, विविध भाव उपजावनि ।
 जय घनश्याम श्यामता धारनि, नित ललाम मन भावनि ।
 नूतन तन धरि प्रेम पयोधरि, बरवस मन सरसावनि ।

प्राकृतिक सौन्दर्य

शान्त होहु पुरबहु अभिलाषा. नेह नवल उलहावनि ।
सत्य सतत बस यही प्रार्थना स्वीकृत करु प्रमुदावनि ॥

—अगस्त १९०८

३

जय जग-जीवन जलद नवल-कुलहा-उलहावन ।
विश्व वाटिका विमल बेलि बन बारि बहावन ।
जीवन दे बन बनसपती में जीवन लावन ।
गरु ग्रीष्मपन-दरप दलन, मन मोद मनावन ।
जय मनभावन बिपत-नसावन सुख सरसावन ।
सावन को जग ठेलि केलि जल चहुँ बरसावन ।
जय घनश्याम ललाम प्रेम-रस उरहि दृढावन ।
फूल भरी बसुधा सिर सारी हरी उढावन ।
बांधि मण्डलाकार पुरन्दर को धनु पावन ।
तरजि दिखावन गरजि, तरजि मन भय उपजावन ॥ १०

सनकावन गन पवन, ज्योति जुगनू चमकावन ।
ठनकावन घन सघन, दामिनी-दुति दमकावन ।
पठइ सदा धाराधर धावन कृपी जुतावन ।
घोर घमण्ड सुनावन बलकर अनल बुतावन ।
निज सुखमा दरसावन, गावन मनहि लगावन ।
सीर समीर रसावन, अंग उमंग जगावन ।
तापन-सतत सतावन, कृषकन जीय जुरावन ।
अतुलित जोम जतावन युवजन हीय चुरावन ।
भर लावन बुदबुदा उठावन भुवि तरजावन ।
अगनित अमित अनूप कीट-कुल-वल सरजावन ॥ २०

हृदय तरङ्ग

चेतन और अचेतन सब के हिय लहरावन ।
जयति पुलकि पग धारि पीर हरि धीर धरावन ।
ठौर ठौर बग-पांति-सोहनी सरन सजावन ।
बीर बहूटी बिपुल गोल गुलगुली भजावन ।
छावन दादुर-दल द्रुमदल पलपल खरकावन ।
बिथित वियोगिनि मोगिनि हिय पिय बिन धरकावन ।
जारि जवासे जोर जचावन मोर नचावन ।
करखा धूम रचावन बरखा धूम मचावन ।
कारी कारी अँधियारी भारी भपकावन ।
टप टप टपका टपका घर बागन टपकावन ॥ ३०

उमगावन सर सरित उमँग उल्लास गुँजावन ।
पपियन प्यास बुभावन जग की आस पुजावन ।
जयति नवेली अलवेली भूला भुलवावन ।
मधुर मनोरंजन कजरी-धुनि कलित मुनावन ।
शोक समूह भुलावन जय छिति-छटा गुहावन ।
बादर बलहिं बुलावन पावस परम सुहावन ।
जो बसुधा को सुधा सुखद, दुख दारिद ग्योवन ।
ता निज जावन को जग-जोवन चहियतु जोवन ।
तासों निज तन जन-मन रोचन संशय मोचन ।
पेखहु भरि भरि लोचन तजि सब सोच सकाँचन ॥ ४०

अद्भुत आभावन्त अंग अति अमल अखण्डत ।
घुमड़ि घुमड़ि घन घनो घूम घिरि घोर घमण्डत ।
कारे कजरावे मतवारे धुरवा धावत ।
सुख सरसावत हिय हरसावत जल बरसावत ।

प्राकृतिक सौन्दर्य

उछरि उछरि जल-छाल छिरकि छिति छर र-र छमकति ।
 चंचल चपला चमचमाति चहुँघा चलि चमकति ।
 मनु यह पटिया परी माँग ईगुर की राजत ।
 छाँह तमालन श्याम, श्याम संग श्यामा भ्राजत ।
 घर कोठनि की तरकनि दरकनि माँटी सरकनि ।
 देखहु तिनकी अर-रर-रर ऊपर सों ररकनि ॥ ५०

खाय चोट फन पलटि सम्हरि रिस करि सुंकारत ।
 लपलपाय जुग जीभ फनी 'फूँ फूँ' फुंकारत ।
 चलै पनारे भूपटि दाल तिन की दुरि अधबर ।
 लै लै भोका पौन खाति भोका आत सुन्दर ।
 हाथ हाथ में डारि डारि लरिका हँसि खिलकत ।
 कुदकि कलिन्दा कूल कहूँ क्रीड़ा करि किलकत ।
 देखहु ग्वार गँवार घेरि गैयन कहूँ मटकत ।
 भपटत भटकत पटकत सटकत लपटत रपटत ।
 लखत खरी बस-करी जुआनी चूवत नस नस ।
 हृदय हरी यहि घरी भरी उनमत्त नवल रस ॥ ६०

यमुना ढरकि करारनि दै दै ढका ढहावति ।
 प्रेम-पगी रज-रंगी लखहु जनु भूमत आवति ।
 चपल लहरि चित चोर चलावत चारु भँवरजल ।
 तरल त्रिबलि तर मनहुँ लसत गम्भीर नाभिथल ।
 पवन वेग सों चर चराय तरु चर-रर चरकत ।
 इतउत भोका खात डार तिन अधवर लटकत ।
 गिरत आप सों आप पात अति सानुराग मन ।
 उतावरे दिसि भूलि भजत तव लेन आगमन ।

इत उत करबट लेत वियोगी पर न कितहु कल ।
 सीरे भरत उसास बास कामल कोयन जल ॥ ७०
 लखि तव शोभा जपत यहो नित नूतन तन धर ।
 हाय पयोधर ! हाय पयोधर !! हाय पयोधर !!!

मेह थमत चुहकार चहचही करत चाव चित ।
 फर फराय निज परन फिरत पंछी गन प्रमुदित ।
 धोये धोये पात तरुन के हरसावत मन ।
 नेक भुकोरत डार भरत अनगिनत अम्बुकन ।
 घन बूँदन सन सजल थलन उपजत बुदबुद गन ।
 रख वतुलाकार बनति तिनके चहुँ ओरन ।
 बड़ि-बड़ि अपने आप नसति जल में ताकी गति ।
 जिमि निरधन हिय आस उठति बड़ि बड़ि पुनि बिनसत ॥ ८०

सुखद सुरीलो गामन में ललना गन गामन ।
 भरि उछाह घरसों तिन आमन भूलन जामन ।
 पवन उड़त उर के पट कों भटपटहिं सम्हारन ।
 मंजुल लोल कलोलनि वालन बिबिध मल्हारन ।
 एक एक कों पकरि बुलावन कर गहि लावन ।
 जोरावरी चलावन भूला भूमकि भुलावन ।
 मधुर मिसमिसी सों मचकी दे जाहि हिलावन ।
 "राखो, मेरी सोह, मरी" कहि तास रखावन ।
 ग्रीपम गया पराई सकल थल सोहत सीतल ।
 देत लेन नहिं चैन रन तऊ मसक-दंस-दल ॥ ९०

प्राकृतिक सौंदर्य

काटत सोवत जनन अभय करि निज निज गरजन ।
जिमि नृप मुँह लागि, देत प्रजाकों अति दुख दुरजन ।
जरत दीपकहि देखि, जरन जावत पतंग गन ।
देत प्रेम-पन परिचय ता संग, होमि होमि तन ।
सती रीति अब उठी सभ्य देशन में या खन ।
लाज न, जब तब राजपुत्तिका पजरत लाखन ।
कबहुँ दुरत घन पटल कबहुँ निकरत पुनि ता मन ।
बिमल उजाम अकास चन्द्रमा करत प्रकास न ।
भिल्लिन की भनकार भुण्ड भट भट भन भनकत
प्रकृति देवि के कड़े छड़े मानहु छन छनकत ॥ १००

मंजु मंजीरनि के बजाय कोउ माज मजावत ।
कै बरदाना रानी बानी बीन बजावत ।
इमली नीम फराम आम अमरुद अनारन ।
पीपर ताल करील बेरि कीकर कचनारन ।
वर सीसम सिरमादि विटप करि तब रस सेवन ।
नयाँ जवम लहि तुमहि देत आसीस मुदित मन ।
ज्वार बाजरा मका अराहरि मूंग मांठ वन ।
ग्वारि कांगुनी तिल रमाम नव-उरद हरत मन ।
भिलमिलात जल बूँद पात पातनि पै भावत ।
हरी मन हरी 'चरी' भरी सौन्दर्य सुहावत ॥ ११०

कच पक फल आम बांझ सों आम झुकावत ।
सतपुरुषन के विभव आय जस नवनि जनावत ।
टपकी परति बहार लदी जामुन जामुन तर ।
भारत "जम्बू द्वीप" कहावन जनु जिनहीं पर ।

मन मयूर को करसत दरसत बरसत बादल ।
तरसत तरुनि नबेलिन बेलिनि फुरत नवल दल ।
कमल केतकी जुही कुटज केस प्रिय प्रफुलित ।
कुसुमित कलित कदम्ब करत बन उपवन सुरभित ।
कोयल करत किलोल ललित रूखन चहुँ लखि लखि ।
मन्द मन्द चलि मधुप पियत मकरन्दहि चखि चखि ॥ १२०

रमत निरत जब रसिक मालती मञ्जुल कलिकन ।
धरत श्याम तन सेत वरन अवरन तिन रज सनि ।
कुल कलापि कमनीय केलि कल कुंज कलापत ।
प्यासो पुनि पुनि "पीय पीय" पपिया परलापत ।
अपनी दिसिहिं, पयोधि चितव चातक की चितबनि ।
ढेरनि "पिय पिय" रटि रटि ढेरनि दुख दिन बितबनि ।
रसना में रस नाहिं तऊ चिल्लात न चूकत ।
वीर धीर गम्भीर भांति यह कहि मनु कूकत ।
"जाओ पीओ कहूँ कहूँ कैसेऊ कोऊ जन ।
मेरी नो अब डोरि लगी तोही सों हे घन ॥ १३०
देते भक्रोरा कहा भक्रोरा खात सनेहन ।
मेह ! जाउ बरु देह, जाँउ जाचन पर-गेह न ।
बरु बल बरखा उपल मरारहु मेरी पाँखन ।
ताऊ निहचल चाह चित्त में स्वाँती चाखन ।
चाहैं सब थल भरे सिन्धु सर सरितन के जल ।
अमर मूरि मेरी सुखदायनि स्वाँती केवल ।
वेर वेर तब जाँच प्रेम में टाँच न लावति ।
पैनी पट पर पै हू पैनी साँच कहावति ।

परम नरम मम हृदय देखि तोहि सरम न आवत ।
जारे बजमार ! पापेया कों का अजमावत ॥१४०

प्रेम बिबस, लखि देर, रोस सों घन बिदार कर ।
प्रिय पकेरुह पाँति प्रफुल्लित करन प्रभाकर ।
मृग करसायल करन मचक मय घाम निकारत ।
अचक सघन घनश्याम छाँह गहि ताहि निवारत ।
घास परम्पर बढ़ा लखहु निज अङ्ग लपटति ।
मनु बियाग सां विथित सहेला भुजभार भेटति ।
अथवा बार सँवार प्रकृति कटि पर सटकावति ।
ललकि ललाके लहराय लचकि लचि लट लटकावत ।
दिशा मर्जी, रज दबो, हारत रँग सुन्दर बरसत ।
मनहर मजुल दृश्य दूर दूरन लां दरसत ॥१५०

बरन बरन के वादर सों कहूँ परति पवार अति ।
भीनी भानी गंध गहति वर बहंत पवन गति ।
देखहु मनहि प्रसन्न ललित मृग छौननि आनन ।
डोलनि तिनकी कानन करि ऊपर कों कानन ।
रज बिहीन पतरी लतिकन को देखहु लहकन ।
घूँघट पट सो मुख निकारि चाहत जुनु चहकन
भरत द्रुमन सों सुमन सौरभित डारनि हलिहलि
मनहुँ देत बनथली तोहि स्वागत पुष्पाञ्जलि ।
निरखि चहूँ छवि पुञ्ज लगत जुनु यह मनभावन ।
कुञ्ज बिहारी कुञ्जन सों कढ़ि चाहत आवन ॥१६०

परम नीक रमनीक सुखद नित नव मंगल प्रद ।
अमित अमल प्राकृतिक छटा सों प्रमुदित गदगद ।

सजल सफल अति सरल सकल सुरनरमुनि मोहति ।
कलित ललित तृन हरित संकुलित वसुधा सोहति ।
खेचर भूचर जलचर तृण नरु सब के गातन ।
उठति अमन्द तरंग हृदय आनन्द समात न ।
गान तान रस मान जान जिय जनु जग जाचन ।
प्रकृति कामिनी तन उधारि चाहति चहुँ नाचन ।

तेरी सुन्दरताई भाई जो सब के मन ।
मुख सों बरनि न जाई छाई सामी नैनन ॥१७०
यद्यपि कवियन गाई पाई ताकी थाह न ।
मनही मनहिं समाई आई नहिं अवगाहन ।
रह्यो अछूतो गुनि गन हू सों जब तब गुन घन ।
कहा हमारे बूतो देखहु जामों गुनि मन ।
तउ तब सोभा-सुखद बिसद-सुठि पद-मथ दरपन ।
करत सत्यनारायण जन तुम्हरे ही अरपन ॥१७६

४

मन भामिनि दामिनि हे वनश्याम कहौ तुमकों निज अंक लगावै ।
जिय मोद भरयां गन चातक को मिलिवे तुमसों अनुरागत आवै ।
मृदु दावन सों पुरवाई कहौ श्रम खांइ तिहारो प्रमोद बढ़ावै ।
तुम जात जहाँ जहाँ मंजु ललाम छटा सुर चाप तवै सरसावै ॥

प्राकृतिक सौन्दर्य

५

नव चारु तमाल से ये घनश्याम घने बदरा घहरान लगे ।
अरु सीर समीर सने नवनीरन के कन ये बरसान लगे ।
सुर चाप छयो, मदमत्त सबै मुरवा-गन बागनु गान लगे ।
परिकैसे लखों इन ओर चहुँ जव प्यारी, तवै दिसि प्रान लगे ॥

६

वह वेतस-वेलि प्रसून सुवासित-कुंजनि में नदी नीर नयो ।
तट ही तट देखये जाही-जुही-कलिकानु सों जा अति मंजु भयो ।
खिले कूटज फूल उमंगित शैल के शृङ्गनु मानो प्रहास ठयो ।
तिन पै मुरवान के नाचन कों बदरान अनूप वितान छयो ॥

७

अब पुष्पित साल औ अर्जुन को मद पूरव पौन हू लावन लागे ।
तिन वेग सों इन्द्रमनी सम श्यामल य धुरवा-गन धावन लागे ।
श्रम अम्बु सुखावन लावन को छाव मंजु मिलाइ रसावन लागे ।
महकात मही नव बूंदनु सों बरसा-ऋतु वासर आवन लागे ॥

८

अति ऊँचे उठे जिह शृङ्गनु पै घनश्याम-घटा छवि छाई रही ।
अरु मोदमयी मदमत्त मयूरी निरन्तर कूक मचाइ रही ।
खग नीड़ विचित्र धरें तरु पंगति जा-तन-शांभा बढ़ाई रही ।
सुखमा सों सनी अस पर्वत माल मनाहर नैननि भाई रही ॥

—मालती माधव

धीर समीर

१

सकल थल विहरत हौ तुम पौन ।
भेटि प्रिया अंग अंगनिकों फिर मो तन परसत क्यों न ।
मदन-मरार विवस मृग लचनि उतकंठित दिन रैन ।
दुख पावति उत विरह विथित, इन मांहू कों नहिं चैन ।
मुकुलित कलित कुन्द-कलियन कौ मधुमय जो मकरंद ।
संगी तासु कहाइ अहो किन बरसावत आनन्द ॥

२

नव ऊँचे उठे अरविन्दनु में मकरन्द की पुष्ट जो गन्ध बसै ।
तिहि धारि अपार उमंग भरयो अंग अंगनि का सुखमा परसै ।
कबहूँ जड़ सो बनि सीरी सलैनी तरंगनि का रस जो विलसै ।
रसिया यह धीर समीर वही पुनि तो नवजीवन को सरसै ॥

३

सुखप्रद उच्च अग्रानि-भरोखे भाँकि भिभकि फिरि आवै ।
संग उमंग भरी मदिरा का मंद सुगन्ध उड़ावै ।
सरस सधन घनसार हार सां अनुपम ताहि बड़ावै ।
तरुणी-तरुण बिहार जतावत धीर समीर सुहावै ॥

शरद

१

बोरत प्रेम-पयोनिधि में ऋतु शारदी आई दया निज जोरत ।
 टोरत फोरत ग्रीष्म कौ बल बारिद को बल तोरत मोरत ।
 लोरत खंजन पै सतदेव जू छोरत कांस में सांस बहोरत ।
 चोरत मंजु चितै चित चायनि चाँदनी चारु पियूष निचोरत ॥

२

आओ लखैं छवि शरद की, करि दूरि संशय भूरि ।
 मिलि लेहि स्वागत तास, जास उजास चहुँघा पूरि ।
 नहिं प्रात बात समात अंग, उमंग हिय अधिकाय ।
 जलजात-पातनि कोर हिम जलकीय चञ्चल आय ।
 मालती सौरभ चमेली छिटकि कलिकनि पास ।
 नदि कूल फूले लखि परत बहु स्वेत स्वेत जु काँस ।
 जहँ कंज बिकसत, कुमुद बहु, अरु केतकी कल कुञ्ज ।
 गुंज कर रस लेत, दीसत रसिक षटपद पुञ्ज ।
 पिय पीय पपिहा करि रह्यो, अब कहँ मिलै जल-स्वाँति ।
 उन्नत मुखहिं करि व्योम दिशि नहिं लखत मोरन पाँति ।
 गरद बिन छित, शालि सोहत जरद बहु लहराय ।
 पङ्कहु नसानी, शङ्क का की ? चलहिं सब इतराय ।
 नील निर्मल नभ लसै निशिनाथ मंजु प्रकास ।
 सुन्दर सरोवर सलिल में, ता सुघर छाया-भास ।

चारु चमकनि चाँदनी चूनर धरै छवि जाल ।
 माधुर्य मय शशि जासु मुख उडुगन सुमौ कक माल ।
 नील उत्पल चारु चख औ चपल लहरी सैन ।
 मानहुँ चलावति मोहिबे युव जन उरहिं सुख दैन ।
 सारस सरस नव गान मनु कटि किङ्किणी सरसाय ।
 रव मत्त बाल मराल नूपुर कलित ध्वनि जनु छाय ।
 कुसुम कसुमित काँस के मधु हास शोभा पाय ।
 ऋतु-शारदी किधौ कामिनी कमनीय यह दरसाय ।
 "सतदेव" प्रेमिन प्रेम बस टरकाय पावस धाय ।
 सज्जन दरद-दारक प्रिये ! आयो शरद सुखदाय ॥

हेमन्त

सुन्दर शोभित सुखद शरद हेमन्तहिं भेंटी आय ।
 जैसे बालक देखि माय को गिरै गोद में धाय ।
 जानि परै जमुना जल पेठत, पैर गये कटि दूर ।
 'सी सी' करत किनारे आवैं, जाड़ा है भरपूर ॥ १
 पहले से नहिं कमल खिलै अब, निशि में परै तुपार ।
 स्वच्छ सेत-हिमयुक्त हिमाचल दर्शन योग बहार ।
 सूरज भयो छपा—कर जानो धूप गई पतराय ।
 मनहुँ शीत भयभीत याहि लख वारिद लेय छिपाय ॥ २
 हरित खेतमय गाँवन भीतर हिम कण भीगी दूब ।
 मटर फली अरु कोमल मूली मीठी लागै खूब ॥

ज्वार, बाजरा, मूँग, मसीना, मोठ, रमास, गुवार ।
सन, तिल, आदिक अरहर तजि, सब कटि आये घर द्वार ॥ ३

“रबी” जहाँ सींची जावै, तहँ गोहूँ जौ लहरांय ।
सरसों सुमन प्रफुल्लित सोहैं, अलि माला मँडरांय ।
प्रकृति दुकूल हरा धारण कर, आनन अपना खोल ।
हाव भाव मानहुँ बतलावै ठाड़ो करे कलोल ॥ ४

बरहा खोदत श्रमी कृपक वर जल नहिं कहूँ कढ़ि जाय ।
खुरपी और फामडा कर गहि क्यारी काटहिं धाय ।
चरसा गहैं “राम आये” कहि गाय गीत ग्रामीन ।
जीवन हेत देत खेतन कहैं जीवन नित्य नवीन ॥ ५

सीर समीर तीर सम लागत, करत करेजे पीर ।
दिन छीजत रजनी बाढ़ति जिमि द्रुपद-सुता को चीर ।
धुँआ न चैन लैन छिन देवै अश्रु बहावैं नैन ।
छाती तले अँगीठी सुलगे ताहि उठावैं पै न ॥ ६

ज्वाला तापि, दुलाई ओढ़ैं रहैं धूप में जाय ।
चाय भरा सविशाला प्याला पीवैं हिय हरपाय ।
साल दुसाला धारैं निस दिन, गरम मसाला खात ।
सीत कसाला भाला उरमें लगै न पाला जात ॥ ७

मृगमदादि सौरभ सुग्व कारक सेवन करैं सहाय ।
भोजन समय कम्प तऊ होवै हाथ जाहिं ठिठुराय ।
पान खाँय डिबिया भर-भर के तबहुँ न कष्ट नसाय ।
तरनि तापत तापै बिन कब सीत कसाला जाय ? ८

जोगी जती सती सन्यासी कुछ का कुछ रहे गाय ।
 माड़ादार भृत्य माया का नहिँ जाड़ा यह भाय ।
 धीरज तकिया देकर प्यारे आदि रजाई ज्ञान ।
 रमण कीजिये सद ग्रन्थन में शान्ति स्त्री मान ॥ ६

जावें युवक पाठशाला जब पहन कोट पतलून ।
 मोजे डाट बूँट खटकावत सीत लगे तऊ दून ।
 “पैडो” अथवा और ‘सेगरेट’ ‘सेफ मैच’ से वाल ।
 इंजन का सा धुआँ उड़ावें तो भी बुरा हवाल ॥ १०

जर-जर देह, दीन जन दुःखित, कँपकँपात बिलखात ।
 हाट बाट अरु घाट घाट पर माँगत खात लखात ।
 “अब की कठिन प्राण रक्षा है” कहि कहि के यह बात ।
 बड़े कसाई, अति दुखदाई, जाड़े से इठि जात ॥ ११

निस्सहाय निर्बल इन आरत भारतवासिन ओर ।
 देश हितैषी धनी धार्मिक फेरौ लांचन कोर ।
 हे हेमन्त हिमाचल वासी ! अधिक कष्ट जनि देहु ।
 विनय सत्यनारायण की यह इतनी तुम सुनि लेहु ॥ १२

वन

भर भर भर भरना भरत, जिह गुफानि सब काल ।
 गोदावरि सरितट मिली, यह साँई गिरिमाल ।
 जिन कुहरनि गद गद नदति, गोदावरि की धार ।
 शिखिर श्याम, घन सजल सों, ते दक्खिनी पहार ।

प्राकृतिक सौन्दर्य

करत कुलाहल दूरि सों, चंचल उठत उत्तंग ।
एक दूसरी सों जहाँ, खाइ चपेट तरंग ।
अति अगाध विलसत सलिल-छटा अटल अभिगम ।
मन भावन पावन परम ते सरि-संगम धाम ॥

ये गिरि सोई जहाँ मधुरी, मदमत्त मयूरनि की धुनि छाई ।
या वन में कमनीय मृगानि की, लोल कलोलनि डोलनि भाई ।
सोहैं सरित्तट धारि घनी जल-वृच्छन की नवनाल निकाई ।
बंजुल मंजु लतानि की चारु, चुभाली जहाँ सुखमा सरसाई ॥

यहिं वेतस-वल्लरी पै खग बैठि, कलोल भरे मृदु बोल सुनावैं ।
तिनसों भ्रां पुष्प-सुगन्धित तय, बहैं अति सीतल हीतल भावैं ।
फल पुंज पकेनि के कारन, श्यामल मंजुल जम्बु निकुंज लखावैं ।
उनमें रुकि कैं करि घर घनी, भरनानि के श्रात समूह सुहावैं ॥

इन खोहनि में दल गीछनि को बसि, जोवन जोर मरोर जतावैं ।
गिरि गूँज के संग उमग भर्या, भयकारी धुनी घनघोर मचावैं ।
कहुँ कुंजर सों रुँदि कुन्दरुकी, कुचिली निज गाँठिन कों दरसावैं ।
तिनसों कहुँ सीतल ओर कसेली, चुईरस-गंग चहुँ छितिछावैं ॥

ये जन स्थान सीमा महान, जहँ सघन गहन वन विद्यमान ।
निश्शब्द शांतिमय कहूँ अखंड, वन-जन्तु नाद सों कहूँ प्रचंड ।
जहँ लपलपात रमना अपार, सुख सों सावत अहि फन पसार ।
तिन तप्त माँस मन कहूँ विशाल, जरि उठत भयंकर ज्वाल माल ।
दे गई भूमि जहँ पै दरार, दीसत कछु कछु जल तिन ममार ।
अजगर-श्रम-सीकर भासमान, प्यासे गिरगट तिहि करत पान ॥

—उत्तर रामचरित्र

विकसीं नव वेगरी घुण्डिनु सों घनी शोभा कदम्बनु की सरसावै ।
गिरि-रम्य-तटी लागि छाई छटा चहुँघा घनश्याम घटा लहरावै ।
सरि-श्रोत के तार नवीन कहीं कलिकानु सों सुन्दर केतकि छावै ।
खिले लोध औ छत्रक फूलनि साजि बनी रमनी मुसकाति सुश्रावै ॥

—मालती माधव



श्री ब्रजभाषा

सजन सरस घनश्याम अव, दीजे रस बरसाय ।
जासों ब्रज-भाषा-लता, हरी भरी लहराय ॥

श्री ब्रजभाषा

श्रीहरिः

भुवन विदित यह यदपि चारु भारत भुवि पावन ।
पै रसपूने कमंडल ब्रजमंडल मनभावन ।
परम पुण्यमय प्रकृतिछटा यह विधि बिथुराई ।
जग सुर मुनि नर मंजु जासु जानत सुधराई ।
जिह प्रभाव बस नितनूतन जलधर शोभाधरि ।
सफल काम अभिराम सघन घनश्याम आपु हरि ।
श्रीपति पदपंकज रज परसत जो पुनीत अति ।
आइ जहाँ आनन्द करति अनुभव सहृदय मति ।
जुगल चरन अरविन्द ध्यान मकरन्दपान हित ।
मुनि मन मुदित मिलिन्द निरन्तर बिरमत जहँ नित ।

तहँ सुचि सरल सुभाव रुचिर गुनगन के रासी ।
भोरं भारे बसत नेह बिकसत ब्रजवासी ।
जिनके उच्च उदारभाव-गिरिसों जग आसा ।
जनमी तारनि तरनि कलिन्दिनि यह ब्रजभासा ।
जासु सरस निरमल जगजीवन जीवन माहीं ।
लखियत उज्जल सूर चद की नित परछाहीं ।
जिन प्रकाश सों और प्रकासित सुन्दर लहरी ।
नित नवल रसभरी मनहरी बिलसत गहरी ।
जिह आश्रय लहि कलिमल हर तुलसी सौरभ यस ।
मंजु मधुर मृदु सरस सुगम सुचि हरिजन-सरवस ।

केशव अरु मतिराम बिहारी देव अनूपम ।
हरिश्चन्द्र से जासु कूल कुसुमित रसालद्रुम ।
अष्टछाप अनुपम कदम्ब अघ-ओक निकन्दन ।
मुकुलित प्रेमाकुलित सुखद सुरभित जगबन्दन ।
तुरत सकल भयहरनि आर्य जागृति जयसानी ।
जन मन निज बस करनि लसति पिक भूषन बानी ।
विबिध रंग रञ्जित मनरंजन सुखमा आकर ।
सुचि सुगंध के सदम खिले अगनित पदमाकर ।
जिन पराग सों चौंकि भूमत उत्सुकता प्रेर ।
रहसि रहसि रसखान रसिक अलि गुंज घनेरे ।

बरन बरन में मोहन की प्रतिमूर्ति विराजत ।
अक्षर आभा जासु अलौकिक अद्भुत भ्राजत ।
सुरपद बरन सुभाव विविध रसमय अति उत्तम ।
शुद्ध संस्कृत सुखद आत्मजा अभिनव अनुपम ।
देसकाल अनुसार भाव निज व्यक्त करन में ।
मंजु मनाहर भाषा या सम कांड न जग में ।
ईश्वर मानव प्रेम दांड इकसंग सिखावति ।
उज्ज्वल श्यामलवार जुगल यों जारि मिलावति ।
भेदभाव तांजवे की प्रतिभा जब रसएनी ।
योग गहत तिनसां तब सुन्दर बहत त्रिवेनी ।

करी जाय यदि जासु परीच्छा सविधि यथारथ ।
याही में सब जग को स्वारथ अरु परमारथ ।
बरनन को करि सकत भला तिहभाषा-कोटी ।
मचलि मचलि जामें माँगी हरि माखन रोटी ।

ब्रजभाषा

जाको सो रस अवगाहत जाही में आवै ।
कैसेहू गुनवान थाह जाको नहिं पावै ।

रह्यो यही अवसेस एक आरज जीवनधन ।
चिन्तनीय यह विषय तुमनु सों सब सज्जन गन ।
बंग और महाराष्ट्र सुभग गुजरात देस में ।
अटक कटक पर्यन्त कहिय भारत असंस में ।
एक राष्ट्र भाषा की त्राट जा पूरत आई ।
इतने दिन सों करति रही तुम्हरी सेवकाई ।
सत समरथ कवियनु की कविता प्रमान जामें ।
निरखहु नयन उधारि कहाँलों सबनु गिनमें ।
इकदिन जो माधुर्य कान्तिमय सुखद सुगई ।
मंजु मनोहर मूर्ति जाकी जग जिय भाइ ।
देखत तुम निश्चिन्त जात जाके अब प्राणा ।
अभागिनी शोकात्त कहहु को तासु समाना ?

लिखन रह्यो इक ओर तासु पढ़िबा हू त्यागो ।
मातासों मुख मोरि कहाँ तुव मन अनुराग्या ।
शुभ राष्ट्रीय विचारनु कां जब पुण्य प्रचारा ।
कैसे याके संग किया तुमने उपकारा !!!
रह्यो बनावन याहि राष्ट्रभाषा इक ओरी ।
उलटो जासु अनिष्ट करन लागे बरजारी ।
या जीवन संग्राम माहिं पावत सहाय सब ।
नाम लैन हू तज्यो किन्तु तुमने याको अब ।
क्यों जासों मन फिरयो कृपा करि कछुक जतावौ ।
वृथा आतमा या ब्रजभाषा की न सतावौ ।

जिनके तुम बस परे अहहिं ते सकल बिमाता ।
 ब्रजभाषा ही शुद्ध संस्कृत सांची माता ।
 मातृहृदय को प्रेम मातृहृद ही में आवै ।
 ताका पावन स्वाद बिमाता कबहुँ न पावै ।
 टपकावति प्रेमाश्रु पुलकि तन पूत प्रेमसों ।
 भरि भरि देखत नैन तुमहिं जो नित्यनेम सां ।
 तिहादिस चितवत नाहिं कहाँ की नाति तिहारी ।
 पुण्यप्रकृति तजि प्रतिकृति ताकी लगति पियारी ।

काज न जब कलु करत शिथिलता तन में व्यापत ।
 यही सांचि जननी ब्रजभाषा निसिदिन काँपत ।
 सुत सेवा हित तासु रुचिर रुचि रहत सदाहीं ।
 जनमें पूत कुपूत कुमाता माता नाहीं ।
 जाय कहाँ अब बनहि तुम्हें यहि पाले पांसे ।
 याका बल याको जीवन बस आप भरोसे ।
 निरालम्ब, यह अम्ब याहि अवलम्बनु दीजै ।
 तनसों मनसों धनसों याकी रक्षा कीजै ।
 यही रहति जननी की केवल नित अभिलाषा ।
 'सफल होहि तुव सबै उच्च उन्नत प्रिय आशा ।
 'सकल ओर अभ्युदय सूर्य की किरन प्रकासैं ।
 'नसहि अविद्या रैन ज्ञान-नय कमल विकासैं ।
 'जागृत त्रिविधि बयारि बसन्ती नित सरसावैं ।
 'निरमल पर-उपहार हृदय मधि लहरि सुशवैं ॥
 'सोहैं सुजन रसाल प्रेम मंत्ररि चहुँ छाये ।
 'निज भाषा रुचि लता अङ्क लहि परम सुहाये ।

‘कवि कोयल सत्काव्य कूक अपनी उच्चारैं ।
 ‘गुनि गुनगाहक रसिक भ्रमर मंजुल गुञ्जारैं ।
 ‘जगमगाय जातीय प्रेम, सुधरै चरित्र बल ।
 ‘सब के हों आदर्श उच्च उत्तम अरु उज्ज्वल ।
 ‘विद्याविनय विवेक प्रकृति छवि मनहिं लुभावै ।
 ‘दुख को हो बस अन्त, देस भारत सुख पावै ।’

❀ ❀ ❀ ❀

परब्रह्म परमात्म घट घट अन्तरजामी ।
 पूरहिं यह अभिलास सत्यनारायण स्वामी ॥



हास्य

हास्य

गिरिजा सिन्धुजा सम्बाद

सिन्धु-सुता इक दिना सिधाई श्री गिरि-सुता दुवारे ।
विघ्न-विदारण मातु कहाँ ? यह भाख्यो लागि किवारे ।
कष्ट-निवारन मंगल-करनी जाके सब गुन गावैं ।
मेरे द्वार पास तिहि कारण विघन रहन नहिं पावैं ।
कहाँ भिखारी गयो यहाँ ते करे जो तुव प्रतिपालो ?
होगो वहाँ जाय किन देखो बलि पै परयो कसालो ।
गरल-अहारी कहाँ ? बताओ लेहुँ आप सों लेखो ।
बार बार का पूँछति मोकों जाय पूतना देखो ।
बहुरि पियारी मोहि बताओ भुजँग-नाह परवीनो ?
देखहु जाय शेष-शय्या पर जहाँ शयन तिन कीनों ।
कहाँ पशुपती मोहि दिखाओ ? गोकुल डगर पधारो ।
शैलपती कहँ ? कर में धारैं गोबरधनहि निहारो ।
सत्य नरायण हँसि के कमला भीतर चरण पधारै ।
अस आमोद प्रमोद दोऊ को हमरे शोक निवारै ।

२०—५—३०

कलदार कल्पतरु ।

भज कलदारं भज कलदारं कलदारं भज मूढमते ।

खेलत बित्तै दई लरिकार्ई ।

तरुण भये तरुणी मन भाई ।

वृद्ध वयसि मति गति बौराई ।

विपति हरनि सम्पति न कमाई ।—भज०

शिल्प कला अभ्यास न भायो ।

व्यापारहि ना चित्त लगायो ।

हितू धनी कोउ काम न आयो ।

नाहक बातन जनम गमायो ॥—भज०

कोरी भक्तिऽरु कोरो ज्ञाना ।

कोरी कविता-शक्ति महाना ।

कोरे कण्ठ कुरान पुराना ।

बिना रुपैया नहिं सम्माना ॥—भज०

केवल धनी सकल गुन आगर ।

सभा समिति मधि पूर्ण उजागर ।

चंचल चतुर चमत्कृत सुन्दर ।

मनु वसुन्धरा प्रकट पुरन्दर ॥—भज०

जा हित जग नर पढ़ैं पढ़ावैं ।

तान सुरीली चहुँ दिसि गावैं ।

देश विदेश कुदक कर जावैं ।

पै मन में सन्तोष न पावैं ॥—भज०

धन हित रूप कुरूप बनावें ।

धन हित तन में भस्म रमावें ।

धन हित लम्बी जटा रखावें ।

धन हित पीरे बसन रँगावें ॥—भज०

ये ही सब के प्रान बचावै ।

दारुण दुःख दरिद्र भगावै ।

बाकों तू विदेश टरकावै ।

रे मतिमन्द न लज्जा आवै ॥—भज०

ये ही सुहृद बन्धु प्रिय चाकर ।

ये ही कर्म धर्म को आकर ।

या के बिन सब निपट अनारी ।

वात न पूछे प्राण पियारी ॥—भज०

ये ही उन्नति शिखर चढ़ावै ।

ये ही शान्ताकार बनावै ।

ये ही विपता बिकट नसावै ।

ये ही जग में पाँय पुजावै ॥—भज०

तनय कहै यह पिता हमारा ।

सन्यौ सनेह सकल परिवारा ।

जा बिन मित्रहु आँख चुरावै ।

सत्वर आनन निरखि दुरावै ॥—भज०

हृदय तरङ्ग

जग अथाह रत्नाकर भारी ।
माया सीप समिति हिय हारी ।
परत स्वांति उत्साह अपारा ।
प्रगटहिं मुक्ता - आविष्कारा ॥—भज०

जनवरी १९०८



प्रशस्ति

प्रशस्ति

श्रीरामतीर्थाष्टक

जय जय ब्रह्मानन्द-मगन जन-मन-हरसावन ।
जय अमन्द सुन्दर सनेह रस सुठि सरसावन ।
जय विशुद्ध वेदान्त 'व्यास' नय मग दरसावन ।
जय सिद्धान्त उजास 'राम-बरसा' बरसावन ।
जय पुलकित तन पावन परम, प्रफुलित प्रिय प्रेभायतन ।
जय जग दुरलभ आचार्य वर. आर्य्य रत्न-गर्भा-रतन ॥१॥
जय तपचर्या-उदाहरण मनहरन जु अनुपम ।
जय नित नबल उमङ्ग भरन युवकन हिय उत्तम ।
जय उदार पर-हित-सुधार-रत भारत प्रियतम ।
जय जिय जाननहार राउ अरु रंक एक सम ।
जय वर विराग अनुराग प्रद, गदगद हिय सत सुहृदवर ।
जय पद पद पर स्वातन्त्र्य प्रिय, विसद प्रेम-पंकज-भ्रमर ॥२॥
जय पंजाब-मराल बाल गुन मंजु माल धर ।
जयति स्वप्न-प्रतिपाल सुमति-गति-रुचि रसाल वर ।
जय विनोद-व्रत-विमल सुधाकर-कर उज्जल तर ।
जय स्वजन्म वसुधा सेवा-रत निरत निरन्तर ।
जय भव-भय दारुन दुख हरन भेद हरन तारन तरन ।
जय पूरन मृदु स्वर सों 'प्रणव' उच्चारन धारन करन ॥३॥

जय कुभाव-कुल-कदन सरलता-सदन सुहावन ।
 चारुवदन मन मदन मदन मोहन मन भावन ।
 जय अगाध रस रङ्गी गङ्गी^१ सङ्गी पावन ।
 ब्रज-ब्रजभाषा भक्त भक्ति रस रुचिर रसावन ।
 जय जग कलोल कर लोल अति गोल चन्द प्रियतम परम ।
 धृति धरम प्रभाकर नरम हिय हारन भव भय भरम तम ॥४॥

जय प्रन-प्रनय दृढावन दृढतर छोह छुड़ावन ।
 आरज-सुयस बड़ावन वैदिक ध्वजा उड़ावन ।
 जय विदेश विद्वान चकित चंचल चित चोरन ।
 नित अशेष उपदेश प्रचुर पीयूष निचोरन ।
 भुवि विश्रुत विविध प्रमान जुत दै दै श्रुति परिचय प्रबल ।
 जय जयकुमार^२ जय पान जिय भारत रति राची नवल ॥५॥

विशद उपनिषद पदम 'अलिफ'^३ षटपद गुंजारन !
 सुवर स्वच्छ स्वच्छन्द साधु उद्देश सँवारन ।
 सुलभ सुजान अमान मनोविज्ञान उधारन ।
 भारत-दशा सुधारन सब तन मन धन वारन ।
 जय मन्द-मन्द आनन्द-रस-पारायण पपिया अमद ।
 जय निरत आत्म-रत सतत सत, सतनारायण हिय सुखद ॥६॥

यह आतम अज अगम अमर अनुपम अरु अक्षय ।
 तजि यासों सम्बन्ध प्रकृति में प्रकृति होति लय ।

१. गंगाजी । २. शालिग्राम-स्वरूप कृष्ण का प्यारा नाम ।

३. उर्दू मासिक पत्र ।

प्रशस्ति

यों विचारि उर मरम प्रबल प्रगटत इमि निश्चय ।
रामतीर्थ भारतमय भारत रामतीर्थमय ।
कहा मिलन-बिछुरन जबै तुम हममें हम तुममें बसत ।
बस विमल ब्रह्म वैभव विपुल विश्व-व्याप्त केवल लसत ॥७॥
जब लौं देश हितैषिन को भारत में आदर ।
जब लौं भुवि अखण्ड शङ्कर वेदान्त उजागर ।
जबलौं सुभग स्वदेश भक्ति निशेष बसति मन ।
जबलौं जगमग जगत जगत जगमगत प्रेमपन ।
तबलौं निस्संशय रहहि, रामतीर्थ कीरति अमल ।
नित अङ्कित प्रति उर पटल पै, अजर अमर अविचल अटल ॥८॥

श्रीगांधी-स्तव

(१)

जय जय सद्गुन सदन अखिल भारत के प्यारे ।
जय जगमधि अनवधि कीरति कल विमल उज्यारे ।
जयति भुवन-विख्यात सहन-प्रतिरोध सुमूरति ।
सज्जन समभ्रातृत्व शान्ति की सुखमय सूरति ।
जय कर्मवीर त्यागी परम आतम-त्यागि-विकास-कर ।
जय यस-सुगंधि-बितरन करन गांधी मोहनदास वर ॥

(२)

जय परकाज निबाहन कृत बन्दी गृह पावन ।
किन्तु मुदित मन वही भाव मंजुल मनभावन ।

मातृभक्त जातीय भाव-रक्षण के नेमी ।
हिन्दी हिन्दू हिन्द देश के साँचे प्रेमी ।
निज रिपुहू को अपराध नित छमत न कछु शंका धरत ।
नव नवनीत समान अस मृदुलभाव जग-हिय हरत ॥

(३)

जयति तनय अरु दार सकल परिवार मोह तजि ।
एकहि व्रत पावन साधारन ताहि रहे भजि ।
जय स्वकार्य तत्परता-रत अरु सहनशील अति ।
उदाहरन करतव्य-परायनता के शुचमति ।
जय देशभक्ति-आदर्श प्रिय शुद्ध चरित अनुपम अमल ।
जय जय जातीय तड़ाग के अभिनव अति कोमल कमल ॥

(४)

जय विपत्ति में धैर्य धरन अविचल अविचल मन ।
दृढ़ व्रत शुच निष्कपट दीन दुखियन आस्वासन ।
जय निम्स्वारथ दिव्य जोति पावन उज्जलतर ।
परमारथ प्रिय प्रेम-बेलि अलबेलि मनोहर ।
तुम से बस तुमहीं लसत और कहा कहि चित भरै ।
सिवराज प्रताप उरु मेजिनी किन-किन सों तुलना करै ॥

(५)

एक ओर अन्याय, स्वार्थ की चिन्ता बाढ़ी ।
अत्याचार अपार घृणित निर्दयता ठाढ़ी ॥
अपर ओर मनुष्यत्व स्वत्व की मूरति निर्मल ।
कोमल अति कमनीय किन्तु प्रतिपल प्रण अविचल ।

यहि देवासुर संग्राम में विदित जगत की नीति है ।
बस किंकर्तव्य विमूढ़ बहू भूलि परस्पर प्रीति है ॥

(६)

अपुहिं सारथी बने कमलदल आयत लोचन ।
अरजुन सों बतरात विहँसि त्रयताप-विमोचन ।
धीरज सब बिधि देत यही पुनि-पुनि समभावत ।
दैन्यपलायन एकहु ना मोहि रन में भावत ।
इक निमित्तमात्र है तू अहो क्यों निज चित विस्मय धरै ।
गोपालकृष्ण मोहन मदन सो तुम्हार रक्षा करै ॥

(७)

यहि अवसर जो दियो आत्मबल को तुम परिचय ।
लची निरंकुश शक्ति भई मुदमई सत्य जय ।
जननी जन्मभूमि भाषा यह आज यथारथ ।
पूत सपूत आप जैसा लहि परम कृतारथ ।
लखि मोहन मुखचंद तव याके हृदय उमंग है ।
त्रयतापहरत मन मुद भरत लहरत भाव तरंग है ॥

(८)

निज कोमल बाणी सों हिन्दू जाति जगावौ ।
नवजीवन यहि नीरस मानस में उमगावौ ।
अब या हिन्दी को सिर निर्भय उच्च उठावौ ।
सुभग सुमन याके पद पदमनु चारु चढ़ावौ ।
यह नम्र निवेदन आप सों जिनको प्रेम अनन्य है ।
हैं न्यौछावर तव चरनु पै हम जीवनधन धन्य है ॥

रवीन्द्र-वन्दना

जय-जय कवि-कुल-तिलक भारती देवि उपासक ।
 रुचिर रम्य सद्भाव सुभग कर निकर प्रकासक ।
 जय-जय भारत-कीर्ति धवल धुज जग फहरावन ।
 विद्युत इव जातीय प्रेम नस-नस लहरावन ।
 जय विश्वविदित विजयी प्रमुख सौम्य मूर्ति तव लसत नित ।
 जिहि लखि-लखि प्रचुर विदेश जन होत नेह नत चकित चित॥१॥

जय जय सहृदय सदय सुहृद नय नागर नीके ।
 बिमल बोल अनमोल चखावन हार अर्मी के ।
 सुखद 'ब्रह्मविद्यालय' 'शान्तिनिकेतन' थापक ।
 पुण्य प्रभा प्रतिभा के पूरन प्रियतम ज्ञापक ।
 जय जयति बंग-साहित्य के उन्नतकर अनुपम अमल ।
 निज कविताकर विस्तारि वर विकासावन जन हिय कमल ॥२॥

सदशिक्षा आराधन 'साधन' गुन गन आगर ।
 योगी उपयोगी कारज कृत सुफल उजागर ।
 विशद विवेक विकास प्रकाश करत अति सुन्दर ।
 महा महिम भुवि कोविद उर अधिवसत पुरन्दर ।
 यासों मंजु 'रवीन्द्र' तव नाम सुभग सार्थक मधुर ।
 जग अबके अखिल कवीन में लसत आप परबीन धुर ॥३॥

जैसी करी कृतार्थ तुम अँगरेजी भाषा ।
 तिमि हिन्दी उपकार करहुगे ऐसी आशा ।
 एक भाव सों रवि ज्यों वस्तुनि वृद्धि प्रदायक ।
 वरसत सरसत इन्द्र सकल थल त्यों सुरनायक ।

‘रवि’ ‘इन्द्र’ मिले दोउ एक जहँ, तउ अचरज कैसेो अहै ।
यह प्यासी हिन्दी चातकी तव रस को तरसत रहै ॥४॥]

धन्य धन्य वह पुण्य भूमि जिन तुम उपजाये ।
धन्य धन्य वह निरमल कुल तुमसे सुत जाये ।
धन्य आगरा नगर जहाँ शुभ चरन पधारे ।
धन्य धन्य हमहूँ सब दरसन पाइ तिहारे ।
अस देहिं दिव्य ‘देवेन्द्र’ वर करहु देश-सेवा भली ।
यह अर्पित तव कर-कमल में सत्य सुमन गीताञ्जली ॥५॥

श्री तिलक वन्दना

जय जय जय द्विजराज देश के साँचे नायक ।
यदपि प्रभासत वक्र, सुधा नवजीवन दायक ।
दृग चकोर आराध्य राष्ट्र-नभ-प्रतिभा भाषा ।
बन्दनीय विस्तार विशारद ज्योत्स्ना आशा ।
जय चित पावन सद्भाव सों जग शुभचिन्तक प्रति पलक ।
शिव-भारत-भाल-विशाल के लोकमान्य अनुपम तिलक ॥
देश-भक्ति - स्वर्गीय-गङ्गा - आघात-तीव्र तर ।
गङ्गाधर सम सह्यो अटल मन तुम गङ्गाधर ।
नित स्वदेश हित निर्भय निर्व्रम नीति प्रकाशक ।
जय स्वराज्य संयुक्त-शक्ति के पुण्य उपासक ।
जय आत्म-त्याग अनुराग के उज्ज्वल उच्च उदाहरन ।
जय शिव-संकल्प स्वरूप शुभ एक मात्र तारन-तरन ॥

कर्मयोग आचार्य्य आर्य्य आदर्श उजागर ।
 निर्मल न्याय निकुञ्ज पुञ्ज करुणा के सागर ।
 सुदृढ़ सिंहगढ़ के सज्जोव-ध्वज-धर्म धुरंधर ।
 अद्भुत अनुकरणीय प्रेम के प्रकृत पुरन्दर ।
 प्राणोपम राष्ट्र प्रतापवर, अध त्रिताप हर सुरसरी ।
 जय जन-सत्ता के छत्रपति महाराष्ट्र कुल-कसरी ॥
 मर्यादा-पूरण स्वतंत्रता-प्रियता प्यारी ।
 प्रकृति मधुर मृदु मंजु सरलता देखि तिहारी ।
 रोम रोम कृत-कृत्य भयो यह जन्म कृतारथ ।
 तब दर्शन करि लोचन पायो लाहु यथारथ ।
 चित होत परम गद्गद् मुदित जवै विचारत कृत्य तुव ।
 जय जीवन-जङ्ग-जहाज के जगमगात जातीय ध्रुव ॥
 धन्य धन्य यह देश जहाँ तुम देश भक्त अस ।
 जननी जन्मभूमि तन मन धन जीवन सर्वस ।
 धन्य आगरा नगर धन्य यहाँ के बासी जन ।
 चरण कमल तब दरसि परसि भये जो पुनीत मन ।
 सत विनय यही जगदीश सों हाँय मनोरथ तब सफल ।
 हम हिन्दी पावें विश्व में स्वत्व मानवांचित सकल ॥

श्री गोखले

परम पूज्य सतकर्म-निष्ठ नय-नीति सुनागर ।
 अति उदार चित नित नव-ज्ञान प्रकास उजागर ।
 जासु बचन बरपा सों नवल हृदय लहराये ।
 आक जवास कूर जन पजरे मनहिं लजाये ।

शिक्षा अनिवार्य प्रचार-हित कृत प्रयत्न पुरुषार्थ पर ।
निस्पृह निःस्वारथ द्विजकमल हंस-बंस-अवतंस वर ॥१॥

श्री रानाडे शिक्षा की प्रिय प्रतिमा निरमल ।
भारतीय-जातीय-समिति-कर प्रभा समुज्ज्वल ।
सदा रह्यो दुरभेद्य प्रबल जाको यह निश्चय ।
भारत नित ईश्वरमय ईश्वर नित भारतमय ।

यों देशभक्ति हरिभक्ति में रचि अभिन्नता चारु तर ।
गोपालकृष्ण सत्कथन सों नाम रुचिर चरितार्थ कर ॥२॥

कुली-प्रथा उच्छिन्न करन जिन शक्ति प्रकासी ।
जाके अमित कृतज्ञ प्रवासी भारतवासी ।
नित प्यारे स्वदेश हित कृत तन मन धन अरपन ।
आत्मत्याग आदर्श दूरदर्शी अविचल प्रन ।

जिह् प्रतिभा गुन शासक सजग शासित समयोचित फले ।
जग विदित कर्मयोगी सद्य सद्दय श्रीयुत गोखले ॥३॥

अब सो अन्तरध्यान भये पौरुष विकास में ।
जिमि प्रभात की प्रभा मिले पूरन प्रकाश में ।
जननि जन्म भुवि गोद यदपि तिन देह सिरानी ।
गूँजति उर नभ अजहुँ दिव्य वह विद्युत बानी ।

सम्भव इन घन असुआन सन नेह-लता विस्तीर्ण हो ।
अभिनव प्रसून सन्ताप हर महाप्राण अवतीर्ण हो ॥४॥

नहीं गोखले जगत जगत आदर्श पियारो ।
भारत जग जीवन जहाज हित ध्रुव को तारो ।

स्वत्व और अस्तित्व काज जब करत समर हम ।
 उत्साहित सो करत देत आदेश अनूपम ।
 निज स्वार्थ भेद बिसराय सब मिलिये करि स्वविरोध-इति ।
 बिधि बद्ध समुन्नत कीजिये भारतीय-सेवक-समिति ॥५॥
 अब तो हिन्दू सकल भेद बन्धन निरवारौ ।
 विपति जनित निज विषम बेदना विपुल विचारौ ।
 यदि तुम थापन चाहत गोखले कीर्तिस्मारक ।
 साँचे मन सों तो शिक्षा के बनों प्रचारक ।
 जिहि लहि चहुँ भारत युवक नवजीवन जागृति संचरै ।
 उर अविक्ल धीरज धारि दृढ़ सत्य देश-सेवा करै ॥६॥

श्रीसरोजनी-षट्पदी

जय जय सहृदय सद्य सुहृद कवि गुन गन आगरि ।
 नय नागरि प्रिय परम गोखले कीर्ति उजागरि ।
 कोमल कवित कलाप अलापिनि नित नव नीकी ।
 लोल बोल अनमोल चखावन हारि अमी की ।
 जय भेद भाव के हरन कों सुकृत सुदृढ़ संकल्प वर ।
 चित चकित करनि मुद भरनि नित निज दिखाइ प्रतिभा प्रखर ॥१॥
 आरज मुजस सुगंध सुहावन विपुल विकसिनि ।
 विहसत अधर सुदल सों अनुपम छटा प्रकासिनि ।
 नव जातीय सरोवर की सुखमा सरसावनि ।
 प्रेम प्रस्फुटित पुण्य प्रभा प्यारी दरसावनि ।
 नित मन वच क्रम सों रुचिर तर नूतन भाव प्रयोजनी ।
 प्रिय यथार्थ चरितार्थ तव यासों नाम “सरोजनी” ॥२॥

लखि तव प्रफुलित दर्स हमारो होत सुनिश्चय ।
 दुख की बीता रैन उदित अब सूर्य अभ्युदय ।
 कर्म भीरु उल्लूक लुकन अब लगे अभागे ।
 देश भक्त वर भ्रमर भ्रमत गुंजारन लागे ।
 श्रुति मधुर मुदित द्विज गान कां छाई रखा उत्कर्ष है ।
 अभिनव आभा सों पूर्ण यह देखहु भारतवर्ष है ॥३॥

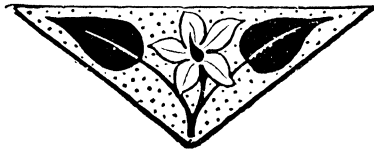
निरुत्साह हेमन्त और पतझर के मारे ।
 सकें न कछु करि बिबस यहाँ के लोग विचारे ।
 असन बसन बिन कम्पत तन अरु अस्फुट भाषा ।
 किन्तु जियावति तिन्है एक बस प्यारी आशा ।
 ऐसे जीवन-संग्राम में हाँवहि वांछित काज है ।
 क्योंकि सुखद आवन चहत श्री ऋतुराज स्वराज है ॥४॥

भारतीय कोकिल प्रियतम निज कूक सुनावौ ।
 या स्वदेश में नवजीवन संचार करावौ ।
 बहु दिन के सुसुप्त को करुणामयी जगावौ ।
 कल कोमल रसाल वाणी सों याहि उठावौ ॥
 जासों यहि आर्यावर्त को नष्ट होइ सन्ताप है ।
 जग जगमगाय नव जाति सों अनुपम प्रबल प्रताप है ॥५॥

धन्य धन्य वह पुण्यभूमि जिन तुम उपजाई ।
 धन्य धन्य वह कुल जिन तुम सी महिला पाई ।
 धन्य आगरा नगर जहाँ शुभ चरन पधारे ।
 धन्य धन्य हमहूँ सब दरसन पाइ तिहारे ।
 सत् विनय प्रवाहित कीजिये देश-प्रेम-रस की नदी ।
 बस अर्पित यह तव क्रीड़ में श्रीसरोजनी-षटपदी ॥६॥

लाला लाजपतिराय

जय निशङ्क निकलङ्क-पूर्ण भारत शशाङ्क वर ।
जय नीतिज्ञ सुजान वीर गम्भीर धीर वर ।
जयति परीक्षित सुवरण सुन्दर सुलभ सुहावन ।
सकल गुप्त मन सुमन प्रेम गुन गहन गुहावन ।
अग्रवाल-प्रिय अग्रवाल सौरभ सरसावन ।
कार्य शक्तिमयि देशभक्ति रस चहुँ बरसावन ।
परम पुण्य मति पूर्ण आप यश सा अनुरागत ।
प्रियतम लजपतिराय सुखद सब विधि तव स्वागत ॥



कविता कुंज

कविता कुंज

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी

था इक दिन, जब नृपति-नीति से कंस डिगा था ।
आर्य-प्रजा पर करने अत्याचार लगा था ।
कोई धर्माचरण नहीं होने पाता था ।
सुख से कोई कभी नहीं सोने पाता था ।
निश्चिन्त मनाते थे मुदित, आनन्द मंगल नित्य खल ।
अति दुःख उठाते थे दुसह, देश-भक्त सज्जन सकल ॥

बढ़ा यथेच्छाचार लगे जब दुष्ट सताने ।
कि-कर्तव्य-विमूढ़ सुजन मन में दहलाने ।
दुख का सुनने वाला जब नृप को नहीं पाया ।
एक प्राण हो प्रभु से सब ने ध्यान लगाया ।
पर बेचैनी बढ़ती गई सब ही को प्रत्येक छिन ।
गये इस विधि भादों मास के जैसे तैसे सात दिन ॥

आधी राति अखंड सघन छाई अँधियारी ।
घिरी हुई सब ओर घटा काली कजरारी ।
कभी कभी जब बादल पानों बरसाते थे ।
टपका कर निज अश्रु वेदना दरसाते थे ।
चल कर पल पल चंचल बिपुल इधर उधर चमके चपल ।
अति घबड़ा अत्याचार से जैसे हो कोई विकल ॥

विविध तरंगाकुल यमुना यद्यपि आती थी ।
 उमड़ा कर निज हृदय दुःख को प्रगटाती थी ।
 मनो सोच जल में डूबी बहती जाती थी ।
 कभी भँवर-भ्रम में पड़ तट से टकराती थी ।
 बस जान आर्य-गौरव गया सुधि-बुधि तज बन सोगिनी ।
 रज तन लपेट रमने लगी मानहुँ कोई जोगिनी ॥

रहा सदा से यही हिन्दुओं का दृढ़ निश्चय ।
 जहाँ धर्म-विश्वास, वास वहाँ करती है जय ।
 धर्म-भाव को सिथिल जगत में जब पाते हैं ।
 लेकर हरि अवतार उसे रखने आते हैं ।
 जब जाना श्रीदेवेश ने भक्तजनों को विपद्मय ।
 भट दिव्य देवकी-गर्भ से किया सदय अपना उदय ।

कृष्णचन्द्र ने चन्द्र सदृश हो उदित सुहावन ।
 छिटका कर निज कीर्ति चन्द्रिका जग मनभावन ।
 न्याय-पक्ष ले दुष्टजनो का दल बल मारा ।
 कर मज्जन-उद्धार भूमि का भार उतारा ।
 निजभक्तों को सर्वत्र ही किया छकित बरसा अमी ।
 इससे ही हुई प्रसिद्ध जग सुखद कृष्ण-जन्माष्टमी ॥

अर्जुन को गीतोपदेश देकर मन-भाया ।
 निर्भय होना कृष्णदेव ने हमें सिखाया ।
 भाई का भी अत्याचार बुरा बतलाया ।
 उचित आत्मगौरव रखना यह हमें जताया ।
 जब आवे सन्मुख स्वत्व का प्रश्न जगत भर में कहीं ।
 वहाँ आत्मशक्ति का काम है दाँत दिखाने का नहीं ॥

कविता कुंज

पुरुषोत्तम के गुण उन में पाये जाते हैं ।
इसमे उनका यश जग में सारे गाते हैं ।
वीरों का पूजन ही उर दृढ़ कर सकता है ।
नवजीवन जागृति नस नस में भर सकता है ।
इसलिए मनाना चाहिए यह धर्मोत्सव नेम से ।
निज भेद-भाव को भूल कर सब को सच्चे प्रेम से ॥

गोवर्धन

सकल नन्द उपनन्द गोप जैसे जुरि आये ।
परम चपल घनश्याम मवै यों कहि समझाये ।
'मानत क्यों तुम, इन्द्र न जाने कहँ कौ को है ।
पूजौ मिलि गिरिराज सुलभ जग जन मन मोहै ।'
जहँ नित प्रमुदित गो-कुल चरत सतत हरत त्रय ताप घन ।
सब हुलसत मुनि जिनको कथन जय जय जय अस गिरिधरन ॥१॥
मुनी खबर यह इन्द्र कोप करि ब्रज पै आयो ।
सहस्र मूसलाधार मेह वा ने बरसायो ।
भरे सरित सर सकल सलिल बसुधा पै छायो ।
डूबन लागे नगर, भयो डर, ब्रज घबरायो ।
हरि ढिंंग हेरत टेरत गये कहिये कीजै का जतन ।
जिन धीर बँधायो सकल विधि जय जय जय अस गिरिधरन ॥२॥
देखे आरत जबै पुकारत सब ब्रजवासी ।
आश्वासन दे सबनि कियो कौतुक अविनासी ।
गये गिरिराज समीप अचक ही नख पै धारयो ।
सात दिना औ राति तनिक हू नाहिं उतारयो ।

सब गोप ग्वाल गोपी गऊ बाल बच्छ रच्छा करन ॥
जो करत पच्छ निज वचन की जय जय जय अस गिरिधरन ॥३

देखो गिरि नख धरें साँवरी सूरति सोहत ।
नटवर वरही-पंख-मुकुट की लटक विमोहत ।
अधर अधर धर बंसी करहिं चलाय बजावत ।
विमल बसीकर श्रम सीकर छवि सों मन भावत ।
श्रुति मकराकृत कुण्डल कलित ललित बलित बनमाल तन ।
जिन करयो सुदृढ़ कटि पीत पट जय जय जय अस गिरिधरन ॥४

इत उत में उपनन्द नन्द सिर पागहिं बाँधे ।
संग बाल गोपाल लकुट निज धरि धरि काधे ।
करि करि ऊँचो तिनहिं सहारो गिरिहिं लगावत ।
कबहुँ महरि करि महरि श्याम की भुज को दावत ।
घबराति मनावति ईश कों कबहुँ जोरि दाऊ करन ।
जन दृग चकार मुख चन्द्र जिन जय जय जय अस गिरिधरन ॥५

कर में इन्द्र निवास खास कर शैल सँवारयो ।
यों सब ताको भार देवनायक पै डारयो ।
सहि न सक्यो सो भार भयातुर भटपट धारयो ।
गिरयो कृष्ण-पग आय टेरि-मय रुदन सुनायो ।
सुनि क्रन्दन तिह करुणा भरयो हँसि हँसि ता की भय हरन ।
जो नंद नंदन नित सरल चित जय जय जय अस गिरिधरन ॥६

बज्रपाणि हरि ने भुज गहि बज्री समझायो ।
गऊ रूप धरनी अरु तिह सम्बन्ध बतायो ।
सुखद परस्पर दोउनि की सुखमा जग छाई ।
करियो रस बरसाय रसा की सदा सहाई ।

कविता कुंज

यह भुवि तेरी प्रिय आभरन अरु तू है जाको आभरन ।
यहि सुनत इन्द्र बिनवन लग्यो जय जय जय अस गिरिधरन ॥७

नित्य पराई पूजा के गाढ़े बन्धन सों ।
नन्दादिक जो गोप बँधे दृढ़तर बहु दिन सों ।
नसि तिन घन तम भ्रम, प्रतिभा विद्युत लहराई ।
दियो आत्म-गौरव कौ जिनकों स्वाद चखाई ।

नव जीवन ज्योति जगाय के जो जग को तारन तरन ।
नित असरन को जो सत सरन जय जय जय अस गिरिधरन ॥८

जय जय त्रिभुवन नाथ जयति जय गर्व-प्रहारी ।
जय जय मंगल करन कृष्ण बाँके गिरधारी ।
माया वस जन जगत अन्य रूपन में रांचे ।
किन्तु अनृपम त्रिभुवन मोहन तुम ही सांचे ।

नित मुद मंगलमय विनय प्रद सब प्रकार जिनके चरन ।
जो ब्रज के सुखदायक परम जय जय जय अस गिरिधरन ॥९

भक्त की भावना ।

क्यों मन ऐसो होत अधीर
परम पिता जो जन प्रति पालक उनको तेरी पीर ।
कर्मवीर बन अरे बावरे ! या जीवन रन माहिं—
अपने आप बँध्या बन्धन में ज्यों पिञ्जर में कीर ।
जगत जगत, तेरे सोवन को अब यह अवसर नाहिं—
हंस-बुद्धि सों बिलग करहु नित हित, अनहित पयनीर ।

है उद्देश आत्म-शासन तब देखि हृदय के बीच—
जग के जाने तू गरीब है वैसे सांचो मीर ।
किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ चेत-हत फँस्यो मोह की कीच—
करि विश्वास सत्य करुणामय अवसि हरहि तब भीर ॥

विज्ञान

विमल बीज सों अंकुर, अंकुर सों द्वे दल नव ।
द्वे दल सों पौधा, प्रिय पौधा सों द्रुम अभिनव ।
द्रुम सों नव-पल्लव, पल्लव सों कली सुहावन ।
कली भली सों कुसुम रुचिर विकसत मनभावन ।
पुनि कुसुम-कोष सों होत फल, कारण कर्म समान है ।
जो प्रगटत यह जग सत्य सो बन्दनीय विज्ञान है ॥

समुदित जिनके होत, अतुल छवि लगी प्रदरसन ।
सत जन नयन चकार चारु चित लागे हरसन ।
नव पल्लव-संपत्ति धारि फूले चहुँ द्रुमगन ।
जानि समय अनुकूल प्रकृति बिहँसी मन ही मन ।
द्रुत-दूर होत जिहि दरस सों निशा निराशा-विपुल भय ।
अस सदा सुदृढ़ रक्षा करै श्रीकृष्णचन्द्र पूरण उदय ॥

—भाद्रपद सं० १९७४

कविता कुंज

मृदुल मृदुल जां मंजु फुहारें सुखप्रद बरसत ।
श्रम सीकर वर विमल बसीकर आनन सरसत ।
मेघ मुरज ठनकावत पिक मृदु मुरलि बजावत ।
सिखी नचावत भावत मन उमंग उपजावत ।
कृत रास रुचिर जन मन हरन नड़ित पीतपट तन धरें ।
श्री प्रकृति-प्रभा घनश्याम अस नितनव सत मंगल करैं ॥

—श्रावण १६७२

जो श्रुति-सुपथ-प्रदर्शक, भारत-धर्म उजागर ।
चित्ताकर्षक धीर वीर, अनुपम नयनागर ।
पुरुषोत्तम आदर्श मात-पितु-आज्ञाकारी ।
तजी लोकमत हेत सुतिय सिय सीं मुकुमारी ।
भुवि-विदित आर्य अनुकूल सत. मर्यादा थापित करन ।
जग-जगमगात-जय देहि श्री रामचन्द्र अमरन सरन ॥

—कार्तिक १६७४

प्रबन्ध

सब रस गहन प्रयोग युक्त विलसत जामें वर ।
शुचि सनेह सों सने हाव औ भाव मनाहर ।
उद्धतता सम्पन्न तऊ अनुराग-सूत्रधर ।
मधुर-विचित्र-कथानक चित नित-नव अनन्द कर ।
जहँ बात बात में सुहृद प्रिय सुठि चातुर्य सुगंध है ।
सो उक्त विविध गुन सों गुंथ्यौ अनुपम चारु प्रबन्ध है ॥

—मालती माधव

चतुर

करे ऊपरी मेल सबन सों सुठि बतरावै ।
जनु कछु जानत नाहिं, धरे अस सरल सुभावै ।
सबकी सुने सलाह, चाल निज ऐसी ठानै ।
सूझम हू सो भेद जासु बैरी नहिं जानै ।
नित प्रगटै अपकों अलग तऊ, सकल निभावै प्रिय-परन ।
नहिं काऊ सों चरचा करे, यही चतुर को आचरन ॥

—मालतीमाधव

कालिका

नैन विकराल लाल रसना दसन दोऊ,
दैत्यदल दलन औ दुष्टन की घालिका ।
सब देव मंडल मुनीश शीश नावै तोहि,
कंठ में बिराजै महा रुंडन की मालिका ।
दोष दुख गंडन कां, विघन निकन्दन कां,
नवौ निधि नाथ तेरे भक्तन की पालिका ।
सत्यदेव देव सुखदायक शरण तेरी,
मेरे दुख देवा को कलेवा करि कालिका ।

बसंत बरस्यो परै

फूल रही केनकी कतार की कतार अरु,
गुञ्जरत मधुकर पुञ्ज दरस्यो परै ।
अम्बन अनारन कदम्बन को रंग देख,
कोकिला कलाप सुनि सुख सरस्यो परै ।

कविता कुंज

सीतल सुगन्ध मन्द मृदुल पवन अति,
ललित विटप लखि मन हरस्यो परे ।
बसन ते बासन ते सुबन सुबासन ते,
बेहड़ ते बन ते बसन्त बरस्यो परे ।

नाम न मेरो

भूमत ज्यों मतवारा मतंग,
सो प्रेम की बेलि को होय न चरो ।
ज्ञान को आंकुस मानत ना,
मन मोह-कुपंथ सों जात न फेरो ।
'सत्य' जिते ही तितै चलि जात है,
ठाक न ठाक कबू यहि केरो ।
कै करुणा करि बांह गहो,
कि कहा करुणानिधि नाम न मेरो ॥

नाम धरायो

रे अलि एतो सँदेश कहो,
मन-मोहन सों हमरो मन भायो ।
नेह रच्यो प्रथमै हमसों,
सतदेव जू बात लगाय रिझायो ।
बावर वौरी हमें कहि क्यों सु,
जे ऊधो के हाथन सों समुझायो ।
गोपिका छाँड़ि अनाथ इतै तऊ,
“गोपिका-नाथ” क्यों नाम धरायो ॥

बात ही निराली है

पौन की सनक, घन सघन ठनक चारु,
 चंचला चिलकि सतदेव चहुँ चाली है ।
 बादर की कड़ी झड़ी लागी चहुँ ओरनुसों,
 बोलत पपैया पीउ पीउ प्रण पाली है ॥
 आतुर सो दादुर उछरि दुर दुर देत,
 दीरघ अवाज बाज गाज मतवाली है ।
 सीतल प्रभात बात खात हरखात गात,
 धोए धोए पातन की बात ही निराली है ॥

सज्जन

बहुधा प्रिय वृत्ति बिनै-मधुरी-बतियानि सों चारु विचार दढ़ावै ।
 पहुँचानि अनिन्दित नित नई, मति मंगल मोद मई मन भावै ।
 रस एक अगार पिछार लसै, छल छिद्र बिना त्रय ताप नसावै ।
 इमि सज्जन-पुरय चरित्र सदाँ, चहुँ ओर विजै बरसा बरसावै ॥

— उत्तर रामचरित्र

तेजधारी

नहिं तेजधारी सहत कबहू बढ़त अन्य प्रताप ।
 यह प्रकृति-जन्य सुभाव उनको अटल अपने आप ।
 यदि तपत नभ करि सूर्य अविरत किरन कुल विस्तार ।
 किमि सूर्यमनि अपमान निज गिनि वमत अग्नि अपार ॥

— उत्तर रामचरित्र

रूपान्तर

रूपान्तर

सदुपदेश ।

वही पड़ौसी तेरा, जिसकी तू सहाय कर सकता है ।
तन से धन से जिसके मन में प्रसन्नता भर सकता है ॥
जिसका हृदय व्यथित अति भारी तप्त ताप से माथ ।
परम प्रेम से, परस बँधावे धीरज तेरा हाथ ॥ १

वही पड़ौसी तेरा, जो अति दीन मूर्छित पड़ा हुआ ।
लुधा जनित निर्बलता वस जिसकी आँखों में धुन्ध हुआ ॥
अधम पेट जिसको भेंजे हैं बार बार प्रति द्वार ।
जाओ करो सहारा देकर उसका बेड़ा पार ॥ २

वही पड़ौसी तेरा, जो अति दुर्बल सा थकने वाला ।
सारी आयु बिता कर जो थोड़े दिन में मरने वाला ॥
चिन्ता पीड़ा कठिन राग से, जिसका झुका शरीर ।
जाओ करि उत्साहित उसको, मित्र ! बँधाओ धीर ॥ ३

वही पड़ौसी तेरा, जिसके उर वियोग पीड़ा भारी ।
गँवा सकल प्रिय वस्तु जगत की, जो थी मंजुल मनहारी ॥
निस्सहाय विधवा अरु बालक मात पिता से हीन ।
जाओ शरणागत-वत्सल हो उनके परम प्रवीन ॥ ४

वही पड़ौसी तेरा. जो खो स्वतंत्रता, श्रम करता है ।
 अंग अंग जिसके निर्बल, जी में निराश हो, डरता है ॥
 होने की निज पूर्ण लालसा मरण काल पर्यन्त ।
 नहीं भरोमा जिसे, छुड़ा धन देकर उसे निचिन्त ॥५॥
 जहाँ कहीं जब कभी मित्र तुम किसी आदमी को पाओ ।
 जो तुमसा नहीं भागवान, उसके कुभाग को चमकाओ ॥
 ध्यान रखो वह भी है तब प्रतिवासी कीट पतंग ।
 जैसे भ्राता पुत्र आदि सब और आप के अंग ॥६॥
 हा ! अपने अल्हड़पन में आ, उसे त्यागकर, मत जाओ ।
 शोकातुर का शोक निवारण करने तुम प्रियवर धाओ ॥
 घटे कदाचित उस दुखिया की हृदय बिथा, लखितव अनुराग ॥
 जाओ, कंठ लगाओ उसका, बांटो प्यारे अपना भाग ॥७॥

स्वदेशानुराग

अस मन मार्यो कहूँ रहै कोऊ जन ।
 कबहुँ न जाने कह्यो सोचि अपने मन ॥
 "है मेरो यह स्वयं जन्म को प्रिय-थल" ।
 उमग्यो ना यह समझि जासु हिय इक पल ॥
 जैसे पलटत घरहि कबहुँ निज पामन ।
 भ्रमत भ्रमत परदेसन सों तहँ आमन ॥
 यदि कोऊ अस, ताहि लखौ भल जाकर ।
 ता हित गाव न कोइ प्रेम में आ कर ॥
 यद्यपि पदवी बड़ी नाम बड़ ताके ।
 इच्छा पूर्वक बहु असीम धन जाके ॥

तदुपरान्त पदवी, धन, बल एकत्रित ।
 करत रहत नित अधम तऊ सब निज हित ॥
 जीवत हू शुभ यश को नाश करावहि ।
 भोगहि दुगनी मृत्यु अधोगति पावहि ॥
 मिलहि तुच्छ रज माँहि जहाँ सों आयौ ।
 अनरोदित अरु अनादरित अनगायो ॥

—स्काट

सरिता

कहौ मोहि समुझाय सरित तुम सुन्दर ।
 बहत कहाँ ते बारि तुम्हारे भरभर ॥
 कहौ कहाँ को प्रिये घूमती डोलै ।
 ऐसी क्यों शोकित चले और अति होलै ॥

जन्म भूमि मेरी है शैल ।
 पालन हार बूँद अपरैल ।
 सोता बना हिंडोला मोर ।
 आच्छादित बन पुष्पन जोर ॥

भगी वहाँ से मैं इक बारा ।
 होकर हठी बौड़हा नारा ।
 वा दिन मैंने करी किलोल ।
 खेली भूधर नीचे डोल ॥

हरित उपज के तीर बीच मम नीर सुहावन ।
 लेत भकोरे जाय प्रसूनों पर मनभावन ।

मुझे मनौ सुन्दर अधरों से लगे बुलाने ।
पुष्पित सुघर अपार अपनि क्यारिन महँ आने ॥

पर वह भड़कीले दृश्य हाय सब बीते ।
अब चंचल तरल तरंग बहें मम रीते ॥
और परै सिन्धु के बैन कान में आकर ।
होगा अब मेरा अन्त वहीं पर जाकर ॥

शशिमुखि ! भवन गवन अब कीजै ।
गहन ग्रहन बेला नगिचानी सजनी रजनी भीजै ।
प्रबल बेगसों राहु केतु मिलि चन्द्र ग्रसन को आवैं ।
मुख मयंक अकलंक निरखि कहूँ तिहि तजि तव दिस धावैं ॥

सहृदय प्यारी !

‘मृत्यु पराजित होत प्रेम सों’ निश्चय जानन हारी ।
वीरासन ह्वै भूपति पति कों लै भुज-लता सहारे ।
ब्रह्म सों विष चूस्यो लगाय जिन मधुराधर अरुणारे ।
कलित कोकनद कलिका कोमल नवल छटा छिटकावै ।
जिमि वसंत में ‘सत’ सौरभ सों गरल ताप विनसावै ॥

—टेनीसन

रूपान्तर

तव कीर्त्ति-मरालिनि सिन्धुहि जाइ
तहाँ बड़वानल सों चकराई ।
निज ताप निवारन ऊपर कों
घबराइ सुधाकर ओर सिधाई ।
पुनि मानि कलङ्कित सोऊ तज्यो
खिसियाइ बड़ी धुनि घोर मचाई ।
उचिटाये सुधाकन जो पर भारि
भये सब तारे अकास में जाई ॥

भगवन् ! मेरा देश जगाना ।
स्वतन्त्रता के उसी स्वर्ग में, जहाँ क्लेश नहीं पाना ॥
रुचे जहाँ मनको निर्भय हो ऊँचा शीश उठाना ।
मिलै बिना कुछ भेद-भावके सबको ज्ञान-खजाना ॥
तंग घरेलू दीवारों का बुना न ताना-बाना ।
इसीलिए बच गया जहाँ का पृथक्-पृथक् हो जाना ॥
सदा सत्य की गहराई से शब्दमात्र का आना ।
पूरणता की ओर यत्न का जहाँ भुजा फैलाना ॥
विमल विवेक सुलभ श्रोते का जां रसपूर्ण सुहाना ।
रुढ़ि भयानक मरुस्थली में जहाँ नहीं छिप जाना ॥
जहाँ उदारशील भावों का भावै नित अपनाना ।
सच्चे कर्मयोग में प्रतिजन सीखे चित्त लगाना ॥

आशीर्वाद

विलसहिं नित सुकृत संत, पापनु को होइ अन्त,
राजै नृप धर्मवंत, सतत न्याय-कारी ।
सीखें उपकार करनु, सब जन निज भेद हरनु,
दारिद्र-दुख-दोष दरनु, जीवन संचारी ॥
बरसें घन सघन छांय, यथा समय आय आय,
जासों भुवि लहलहाय, सस्य रासि धारी ।
सुधरें कलुषित चरित्र, उदय भाव हों पवित्र,
लहि सुराज सत्य मित्र, हो प्रजा सुखारी ॥

—भवभूति

द्वितीय खण्ड

मंगलाचरणा

मंगलाचरण

१

जय जय विपति-विभंजन माधव, जन-मन-रंजन ध्यारे ।
सौख्य-साज-साजन नित प्रियतम, लाज निवाहन हारे ।
दीन-दरिद्र-दुख दारुन दारन वारन-तारन स्वामी ।
बार न लावत, आवत सुन जन-टेर गरुड़ के स्वामी ॥

जगमय तुम अरु तुममय यह जग, पावन घट-घट बासी ।
बर बिनाद बरसावन-भावन बासुदेव अबिनासी ।
विश्व विपुल यह नाटक साला रंग-विरंगी भावै ।
तव गुन नाद-निनाद-वाद्य प्रिय 'नेति-नेति' श्रुति गावै ॥

मनमोहन विद्या-प्रकास चहुँ सोहत सुखद ललामा ।
जो दरसावत खेल सपूरन. पूरन जन-मन-कामा ।
पूरव ऋषि-मुनि सब के पूरव नान्दी पाठ उचारै ।
मंजु-मधुर बानी सौ नित नव मंगल बर विस्तारै ॥

अव्यय, अखिल, अनूप, अलौकिक, लीलामय करतारा ।
जग-नाटक संकेत-सूत्र कर तुम ही सूत्तर-धारा ।
हम सब प्रानी नाट्यपात्र हैं, पुनि-पुनि या मधि आवै ।
जब-जब जीवन उठति जवनिका निज-निज खेल दिखावै ॥

भाग्य-डोरि प्रभु हाथ अगोचर तुमहिं सकल आधारा ।
यह कछु होत दृष्टि गोचर जो तव माया-कृत सारा ।
तुमहीं सौं यह प्रगटि तुमहि में विस्व विलय हो जावै ।
टूटत घट, जिमि जल-अन्तरगत-बिम्ब सूर्य में धावै ॥

तुमहिं जगत के ज्ञान-प्रभाकर, निरत अमल गुण धामा ।
करत प्रफुल्लित परसि मृदुल कर हृदय-कमल अभिरामा ।
अति अगाध गम्भीर आपकौ महिमा-पारावारा ।
परिमित गुन, परिमित मति के हम, का विधि पावैं पारा ॥

जासौं बनहिं स्वधर्म-पगयन इती कृपा प्रभु कीजै ।
उचित और अनुचित में अन्तर करन विसद बुधि दीजै ।
तव पद-पदमन निरत रहै नित, यह चित-घटपद चंचल ।
करहु प्रदान यही वर माँगत 'सत्य' पसार सुअंचल ॥

११-१०-१६१२

२

सकल जगत की पूज्य आशप्रद प्रभा प्रकासिनि ।
दुःख पाश उन्मुक्त करनि आनन्द विकासिनि ।
जगमगात चहुँ दिव्य तेज खल पुंज विदारिनि ।
ब्रह्मचारिनी भक्त तारिनी भव भय हारिनि ॥

नभ जल थल चर अरु अचर में अखिलव्यापिनी तव गती ।
नित होउ हमनु पै सद्य सत स्वयम्शक्ति श्री भगवती ॥

आश्विन १६७२

मंगलाचरण

३

परम पिशार्चा प्रकृति हिरणकश्यप संहारन ।
निरुत्साह घनखम्भ विदारन धृतिबल धारन ।
नवजीवन मंचारन पावन प्रेम प्रचारन ।
मत प्रह्लाद उधारन तारन विपति निवारन ॥
नित कुत्सित रीति जु होलिका. दग्ध ताहि कर मुद भरै ।
अस श्रीनरसिंह वसंत प्रभु सकल भाँति मंगल करै ॥
चैत्र सम्वत् १९७३

४

राम नाम

मंगल करन कलिमल को हरनहार,
पावन को पावन सुहावन ललाम है ।
ब्रह्मपद पावन को जो कोऊ पथिक वर,
ताको मग टांसा प्राण पोसा सुखधाम है ।
कवि वर बैन बिसराम-ऐन एक चारु,
जगत सजन जन जीवन मुदाम है ।
धरम-बिटप बीज सतत तिहारो लसै,
भूति प्रद मग अभिराम राम नाम है ॥

५

अव्यक्त अद्भुत अजेय अनन्त नाम ।
आनन्द कन्द जु अलौकिक पुण्य-ग्राम ।
विज्ञान-पुञ्ज करुणा-रस प्रेम-धाम ।
लीजो सप्रेम इत हेरि मम प्रणाम ॥

क्यों नाथ, बात जु कहा, कछुहूँ बतावौ ।
दुःखार्त्त-भारत-बिथा मन जो न लावौ ।
देँ धीर जासु सब पीर न क्यों नसावौ ।
कोरे कृपालु जग-जीवन के कहावौ ॥

कैसेँ करी प्रबल ग्राह-ग्रस्यौ उबार्यौ ।
कैसेँ जु द्रौपद-सुचीरहि कौँ सम्हार्यौ ।
कैसेँ बताउँ प्रह्लाद-कलेस तार्यौ ।
कैसेँ निकृष्ट नर-नीच निषाद तार्यौ ॥

साँची, कहौ, यदि सबै तव ये कथाएँ ।
तो क्यों, हरी, हरत ना यहँ की बिथाएँ ।
टेरै, तऊ सुनत नाहिं बिपत्ति भारी ।
दीयौ स्वभाव दुग्व-हारन का बिसारी ॥

भेज्यो कहूँ प्रतिनिर्धाः प्रिय पुत्र आप ।
मेटे जहाँ जनन के त्रय ताप पाप ।
ह्वै भक्त-प्रेम बस भारत भूमि भारे ।
देवेश आपुहिं यहाँ कृपया पधारे ॥

सो ही निबाहि निज नेह, यहाँ कहा ये ।
प्लेगादि राग दुर्भिक्ष महा पठाये !

*इस देश की भूमि पवित्र कहे जाने का यह भी एक कारण है कि भगवान कहीं अपने पुत्र को भेजते हैं और कहीं दूतों से ही काम लेते हैं, परन्तु इस देश में वे स्वयं अवतीर्ण होकर लीला करते हैं ।

मंगलाचरण

आछौ निबाह ब्रजराज गुपाल कीयौ !
पूर्णन्दु प्रेम अपने महँ दांप दीयौ !!

माता-पिता सुहृद और सुबन्धु जाकौ ।
तू ही सुज्ञान नय तर्क वितर्क जाकौ ।
जाकौ कला कलित कौसल तू सदा कौ ।
यौ तासु त्याग, कहु नेम प्रभो ! कहाँ कौ ॥

क्यों जगत कौ प्रथम भूषण ये बनायौ ?
ऐसौ उठाय पुनि नाथ ! जु क्यों गिरायौ ?
आपुहिं लगाय तरु काटत कौन ताकौ ?
तू ही प्रभो ! सकल जानत भेद जाकौ ॥

६

मंगलमय मुनिये इतनी विनय हमारी ।
कीजे निज अनुपम दया भक्त-भय-हारी ।
जासों यह जगविद्रोह अनल बुझि जावै ।
सुख-शांति मधुर फल यह मानवकुल पावै ।
सतपथ में नहिं दुर्नीति प्रपंच अड़ावै ।
सबके उर समता भाव पवित्र समावै ।
होय न वसुधा पै भार पाप को भारी ।
कीजे निज अनुपम दया भक्त-भय-हारी ॥ १ ॥

स्वारथ और स्वेच्छाचार यहाँ सौं भागै ।
सुचि नव जीवन की जोति हृदय में जागै ।

प्रिय बन्धु परस्पर पुण्य-प्रेम में पागै।
नित सदाचार व्यवहार करन में लागै।
निज देश दशा कौ समझै लोग अनारी।
कीजै निज अनुपम दया, भक्त-भय हारी ॥ २ ॥

आतम-गौरव कौ भाव जगत बिस्तारै।
चहुँ सुमति-प्रभा प्रगटाइ कुमति कौ टारै।
शुभ भव्य भविष्यत आशा जिय में धारै।
प्रिय हिन्द देश, हिन्दी-भाषा उद्धारै।
घर-घर नहिं छावै बैर-वदरिया कारी।
कीजै निज अनुपम दया, भक्त-भय-हारी ॥ ३ ॥

अपनी पूँजी से हम ज्यौपार बढ़ावै।
उपयोगी देशी सकल पदार्थ बनावै।
उन ही कौ वरतै रुचि सौं रुचिर कहावै।
लग्नि और न कोऊ भृकुटी बृथा चढ़ावै।
बस हों कबहुँ नहिं, यहाँ किसान दुखारी।
कीजै निज अनुपम दया, भक्त-भय-हारी ॥ ४ ॥

लरिबे सुतन्त्रता - हेत वीर जब जावै।
रन सौं मुख मोरि न कुलहिं कलङ्क लगावै।
निज-रिपु-दल-बल हनि, सकल न्याय दरसावै।
नव भारत-कीरति-लता विमल लहरावै।
भुवि वीर जायँ जासौं उन पै बलिहारी।
कीजै निज अनुपम दया, भक्त भक्त-भय-हारी ॥ ५ ॥

मंगलाचरण

हों उज्ज्वल उच्च उदार, मंजु अभिलाखें ।
 कबहूँ नहिं अपनी हम मर्यादा नाखें ।
 सज-धज सब देसी वही पुरानी राखें ।
 सुन्दर सुराज कौ स्वाद निरन्तर चाखें ।
 नस-नस नव जागृति-जोति सत्य संचारी ।
 कीजै निज अनुपम दया, भक्त-भय-हारी ॥ ६ ॥

७

हित करिके नेह निभैयो, घट के अन्तरजामी ॥
 जब गजराज ग्राह ने घेरयो, हारि हिये प्रभु तुम कां टेरयो ।
 केवल दया धारि नहिं हेरयो, आये गरुड़ के गामी ।
 द्रोपदि कौरव बीच पुकारी, हाय ! नाथ मम होत उधारी ।
 चीर राखि तुम लिये उबारी, किरपा सिन्धु अकामी ।
 ध्रुव जी अरु प्रह्लाद पियारे व्याध निषाद निकृष्ट उधारे ।
 गणिका अजामिलादिक तारे, तारे पतित अति नामी ।
 पतित विख्यात स्वामि ! मोहि जानौ, अपने सम अपरहि नहिं मानौ ।
 सतनारायण पार लगावौ, नाथ नमामि नमामी ॥

२७-१-०३

८

अहां श्याम सुन्दर कहँ ? प्यारे ! लकुट मुरलिया वारे ।
 मोर मुकुट भख कुंडल धारे, मो मन मोहन हारे ॥
 सब गुण आगर जय नट-नागर कटि कसि पीत पिछौरी ।
 खेलत लोनी आँख मिचोनी ग्वाल संग में दौरी ॥

दाव स्थान कपट कर छूवत भगइत लिपट पियारे ।
भाजि भाजि कर सींग दिखावत कबहु बिरावन वारे ॥
छकि कर चुल्लू छाछि, नित नये गोपिन नाच दिखावै ।
"भैया टेरेहि, त्यागहु, त्यागहु" दे धाखो कहि आवै ॥

मित्र सुदामा अरु श्रीदामा कान्हर गाय चरैया ।
धूल धूसरित जुलफनि वारे बलदाऊ के भैया ॥
प्यारे बालमुकन्द कृष्ण कबहुँ वे दिन फिर ऐहैं ।
हाथ लकुटिया मटक मटक कर तो सँग धनु चरैहैं ॥

तू तो बहुत बुलावत, हमही आवत ना तो पाहीं ।
चोरी करिबो हमहिं सिखावहि, यह तेरे मन माहीं ॥
मैं तैं मोरि मोरि मन योगी काम क्रोध को जीती ।
तेरे मार ले वन भागें, सब सों छाँड़ि पिरीती ॥

वहाँ पर हू धारे धोपर में, डाको डारत प्यारे ।
प्रेम-अश्रु टपटप टपकावत, पाछे फिरत बिचारे ॥
अहो श्याम का नीति तिहारी, तिनको मन तिन दीजै ।
दे गलवैयां घूम-घुमैयाँ, हम को निरभय कीजै ॥

हम को नेह रंग में रचिकें हमरा मन मति लेहू ।
जब माँगें अपनो मन दीजै औ निज देहु सनेहू ॥
निज जन जानि हमें मधुसूदन ! भक्ति आपनी दीजै ।
करि दाया निज प्यारी माया, नाथ अलग करि लोजै ॥

दे चरणन अनुराग निज, मेटहु भव की ताप ।
कहा स्वामि बिनती करों जानत हो तुम आप ॥

श्री देव्यास्तुति

नमस्ते धीरूपे अगति गति रूपे अकपटी ।
 प्रिये आत्मारूपे चिरथिर स्वरूपे चटपटी ।
 मनोहारी प्यारी कटि कलित सारी जु लपटी ।
 जु हैं प्रस्ता व्याधी जग, तिनहिं मृत्युञ्जय बटी ॥१॥
 रंसीली साधित्री परम चसकीली सुखमयी ।
 भवानी कल्याणी सब हित सुधानी छविछयी ।
 अनन्ते आधारे तब गुण पसारे गुणमयी ।
 वरे हस्तावीणे अति अमल नारायणि नयी ॥२॥
 अनौखी नौका तू भव उदधि सों पार करनी ।
 अपणें बाराही सकल भय की तू सु हरनी ।
 महाविद्ये सौम्ये प्रकट सबकों मां निडरनी ।
 मृडानी सर्वानी शिव-प्रणय-पात्री शिखरनी ॥३॥
 अहा पैनी छैनी त्रय तपनि की मा अति भली ।
 दया दैनी नैनी कमल पिक बैनी नव कली ।
 सबै गर्दे मर्दे असुर असि लै मातु मचली ।
 स्वधे स्वाहे लक्ष्मी दुखदरनि हेमाचल-लली ॥४॥
 तुही सूत्रं देवी मन सुमन तां सों गुहि रहे ।
 तुही सर्वे ज्योती, सब थल प्रकाशा तब अहे ।
 कराला जो व्याला-दुख गरुड़ रूपे गहति हो ।
 महा-ज्वाला-माले, भव जनित व्याधी दहति हो ॥५॥

सती मुख्ये तू ही रविकर जु शंका निकर कों ।
हिमाजा ईशानी हिमकर अशान्ती प्रसर कों ।
तुही है चैतन्ये जग-जड़हि चैतन्य करनी ।
सदाचारे श्रेष्ठे श्रुतिविदित-आभा-प्रसरनी ॥६॥

कराले पिंगाक्षी जन बिपतिहंत्री सुखकरा ।
प्रशस्त सौन्दर्ये खलदल दलन्ती दुख हरा ।
प्रवीणे त्रैगुण्ये रुचिरमति कल्याण करणी ।
सितांगे पिंगाक्षी परम रसिका नील वरणी ॥७॥

शिवानी रुद्रानी भुवन-त्रय रानी भगवती ।
गुणागार सारे अगम जु अपारे बलवती ।
मृगेन्द्रारूढे मा सकल बिधि गूढ़ा तव गती ।
नहीं पावैं ध्यावैं नित गुन जु गावैं बहुमती ॥८॥

अशेषा शेषा के फन मुरक ते भार-धरती ।
पताले सो जाती धसि प्रलय की बन्धि बरती ।
सबै वेदाकारा नसि धरम धारा न भरती ।
प्रचण्डी चण्डी जो न खल दल सों युद्ध करती ॥९॥

कहाँ लों हों गाऊँ तब यश जु चारथो दिशि छयो ।
लखी तेरी माया प्रचलित तितै ही जित गयो ।
भयी सर्वे रूपा जगत सब देवी तुव-मयो ।
नमो शान्ताकारा सब तजि पदाश्रा तव लयो ॥१०॥

सुबाल्यावस्था में निरत रत क्रीड़ा यह रह्यो ।
युवावस्था में मा मद-मदन पीड़ा नित दह्यो ।

भये ब्रुद्धा चेष्टा प्रगट जगधन्धा रचि करे ।
न कीयां मा तेरो भजन कछु, योंही पचि मरे ॥११

न जान्यो आचारा, जठर भरिवो ही नित पढ़े ।
बिचारा जे खोटे सब विधि बुरे ते चित चढ़े ।
न ज्ञाना ध्याना, मा, गुण कथन तेरो नहिं बन्यो ।
न चर्चा अर्चा ही नहिं सुरस प्रीती तव सन्यो ॥१२

किये स्नाना ना परि सलिल तो पै न थरप्यो ।
सु नैवेद्यं पुष्पं भगति मह तो कों न अरप्यो ।
दयाब्धे वात्सल्ये तरल जग-धारा प्रबल है ।
परी नौका, बल्ली कर गहहु, तेरो हि बल है ॥१३

बड़ो रागी द्वेषी पद कमल तेरे नहिं लग्यो ।
सुशीले श्री गर्भे कबहुँ तब पूजा नहिं पग्यो ।
नयी बाला देखीं तिनहिं हित सारे जग खग्यो ।
जहाँ देखी भक्ती तब चरण ह्वां सों डरि भग्यो ॥१४

दिना जा सों ध्याना-रवि, जननि तेरो विसरिगो ।
तभी सों अज्ञाना घन तम चहुँगा बगरिगो ।
फिरैं मारे मारे सत पथ न कोऊ अनुसरैं ।
मिलैं कैसे माता बिन चरण तेरे उर धरैं ॥१५

अपर्णे अव्यक्ते परम शिव प्यारी अभय दे ।
सहस्राक्षी कृष्णे जगतमयि तू ही बिजय दे ।
तिहारी ही दुर्गे शरणगत है के अब परयो ।
करो रक्षा पूर्णे नित रहत ध्याना तव धरयो ॥१६

भुजंगा संसारा विष विषय भारी जु उगिले ।
डस्यां जाने ऐसो मन शरण नाही कहू मिले ।
करो यंत्रा मंत्रा स्वपद-हित जासों यह किले ।
शिवे याकी तृष्णा-दुम गहि पछारो नहिं हिले ॥१७

अहां मा ये लोका स्वपन इव निद्रे लगवतु है ।
विषले जे काजा ततफल फणिन्द्रे महतु है ।
खुलै आंखैं हाथैं मलत कछु नाहीं लहतु है ।
बता इच्छे तेरे पद पदम क्यों ना गहतु है ॥१८

जगज्जाला पूरयो मन मृग इतै आइ जु फँस्यो ।
विषे की तांती सों सुटढ़ करि माता यह गस्यो ।
महा चिन्ता ज्वाला-ज्वलित नहिं शान्ती-जल पिये ।
मुखणै हा माये तब प्रणयहीना किम जिये ॥१९

तरी मोहा घाटी तरुणि-कुच-ऊँचे गिरन की ।
दुराशा शाखा पे नट इव कला खा फिरन की ।
मुराराध्ये ये मो हृदयकपि की है नटखटी ।
म्हभक्ती में याकों गहि करु अधीना शिव नटी ॥२०

बड़ो मैं अज्ञानी सकल अधखानी उर बसी ।
रहै मां सर्वज्ञ विषय अभिलाषा अनघ सी ।
सदां ये बुद्धी मा बसति जग मिथ्या रंग रँगी ।
हृद हा मर में तब चरण प्रीती नहिं जगी ॥२१

त्रियाब्धी सौन्दर्य जल अति अगाधा जहँ भरयो ।
अयं चेतो मत्स भ्रमत भ्रम मांही तहँ परयो ।

स्तनौ तुम्बी युक्ता अलकमय जाला पुरि रह्यो ।
करा रक्षा व्याधा-मनसिज शिवे चाहत गह्यो ॥२२

मठारैगे मोपै हँस हँस कहैगे “बड़ कच्यो ।
“जुपै भारी राख्यो निज विपति भारा नहि पच्यो ।
“स्वमाता सों ऐसो अनुचित कह्यो ना कछु जँच्यो ।”
कहां काऊ कैसो अब जननि तेरे रँग रच्यो ॥२३

प्रिये कृष्ण-प्राणै रुकमिणि सनाढ्य सरस्वती ।
सती भामे-वृन्दे-शिरमणि सती औ जयवती ।
विशालाक्षी देवी कर कमल माये जनकजे ।
सुधीरे श्रीकण्ठे चहुँ विजय तेरे पद भजे ॥२४

अहां मा सृष्टी कों सृजिथित बिनासा करति तू ।
महामाये दाये सकल मन भाये भरति तू ।
ध्रुवे ध्री कैवल्ये सुखकरणि श्रीशंकर प्रिये ।
अमोली दै नित्ये निजचरण भक्ती मम हिये ॥२५

लगें तो पूजा में रहत नहि दूजा चहत हैं ।
मुनि ज्ञानी ध्यानी सकल जन मानी कहत हैं ।
अमारी संसारी मद-अनल में जे दहत हैं ।
तवांध्री ध्याये सों परमपद माता लहत हैं ॥२६

प्रसन्ने श्री दुर्गे नव पुहुप माला उर लसै ।
दिपै टीका नीका मिलत फल जी का जब हँसै ।
यही मांगों तेरी भयहरणि मूर्ती मन बसै ।
नमो ह्रीं सर्वेशे नित चहत गायो तब जसै ॥२७

गुणातीते सीते निरमल श्रीते सुगति है ।
हरा बाधे राधे करु सुख अगाधे सुमति है ।
करै विद्याभ्यासा नित कवि विलासा सुरति है ।
अचिन्त्ये पद्मस्थे पद पदम की मा सुरति है ॥२८

न जानौ मै रीती प्रवल कविता के करन की ।
न ऐसी मो प्रीता जप तप सु-नेमा-धरन की ।
क्षमा कीजो दीजो सुबुधि जग-धारा तरन में ।
रखो, सत्यानारायण नित स्वकीया शरन में ॥२९

असंख्या तो नामा निखिल जग में को गिनि सकै ?
अनेका तो रूपा चतुर नर को जो भनि सकै ?
जवै ना छोटे से सर जलहिं पारा करि सकौं ।
कथं पारावारा तव गुण अपारा तरि सकौं ॥३०

मेरी जु है पद्म सुपद्म माला ।
गुही त्वदीय गुण सों रसाला ।
स्वीकार याकों करि चन्द्रकान्ते ।
स्वभक्ति दीजे मम हीय शान्ते ॥३१

—सं० १६६१

१०

शिव ताण्डव स्तोत्र ।

जटा-अरण्य तें भरी सुगंग-वारि-धार सों ।
 पवित्र कण्ठ साजि जां भुजंग तुंग हार सों ।
 डमड-डमड डमन्निनाद जास डामरू करै ।
 वही गिरीश नाचि नाचि मोद मो हिये भरै ॥ १

जटानि की सटानि माहिं गंग भूलती भूमै ।
 लता-तरंग-तोय तास जास माथ में रमै ।
 प्रज्वाल ज्वाल जास भाल में धगद् धगद् दहै ।
 किशोर-चन्द्र-चूड़ में सनेह मो सदां रहै ॥ २

बँध्यो सप्रेम जो सदा गिरीन्द्रजा-विलास को ।
 सुनै न तास पैखि कै प्रसन्न जीय जास को ।
 कृपा-कटाक्ष-कोर जास, घोर आपदा हरै ।
 वही दिगम्बरी स्वरूप मो विनोद कों करै ॥ ३

जटानि की सुपीत जो फणी-मणी-प्रभाहिलै ।
 सु कीच कुंकुमा मनौ दिशावधू-मुखै मलै ।
 मतंग मत्त दैत्य-चर्म-वस्त्र सों तनै गसै ।
 वही सुभूतनाथ मो हिण अन्नन्द कों रसै ॥ ४

ललाट बीच जासु के कढ़ै सुवन्हि की भरै ।
 कराल मार छार कीय इन्द्र पाम जा परै ।
 सुधाकरीय-रेख सोहती सुभाल जास पै ।
 वही कपालि गंगजूट हों दयाल दास पै ॥ ५

गुणातीते सीते निरमल अमीते सुगति दें ।
हरा बाधे राधे करु सुख अगाधे सुमति दें ।
करें विद्याभ्यासा नित कवि विलासा सुरति दें ।
अचिन्त्ये पद्मस्थे पद पद्म की मा सु-रति दें ॥२८

न जानौं मै रीती प्रवल कविता के करन की ।
न ऐसी मो प्रीता जप तप सु-नेमा-धरन की ।
क्षमा कीजो दीजो सुबुधि जग-धारा तरन में ।
रखो, सत्यानारायण नित स्वकीया शरन में ॥२९

असंख्या तो नामा निखिल जग में को गिनि सकै ?
अनेका तो रूपा चतुर नर को जो भनि सकै ?
जवै ना छोटे से सर जलहिं पारा करि सकौं ।
कथं पारावारा तव गुण अपारा तरि सकौं ॥३०

मेरी जु है पद्य सुपद्म माला ।
गुही त्वदीय गुण सों रसाला ।
स्वीकार याकों करि चन्द्रकान्ते ।
स्वभक्ति दीजे मम हीय शान्ते ॥३१

—सं० १६६१

१०

शिव ताण्डव स्तोत्र ।

जटा-अरण्य तें भरी सुगंग-वारि-धार सों ।
 पवित्र कण्ठ साजि जां भुजंग तुंग हार सों ।
 डमड-डमड डमन्निनाद जास डामरू करै ।
 वही गिरीश नाचि नाचि मोद मो हिये भरै ॥ १

जटानि की सटानि माहिं गंग भूलती भूमै ।
 लता-तरंग-तोय तास जास माथ में रमै ।
 प्रज्वाल ज्वाल जास भाल में धगद् धगद् दहै ।
 किशोर-चन्द्र-चूड़ में सनेह मो सदां रहै ॥ २

बँध्यो सप्रेम जो सदा गिरीन्द्रजा-विलास को ।
 सुनैन तास पैखि कै प्रसन्न जीय जास को ।
 कृपा-कटाक्ष-कोर जास, घोर आपदा हरै ।
 वही दिगम्बरी स्वरूप मो विनोद कों करै ॥ ३

जटानि की सुपीत जो फणी-मणी-प्रभाहिलै ।
 सु कीच कुंकुमा मनौ दिशावधू-मुखै मलै ।
 मतंग मत्त दैत्य-चर्म-वस्त्र सों तनै गसै ।
 वही सुभूतनाथ मो हिण अनन्द कों रसै ॥ ४

ललाट बीच जासु के कढ़ै सुवन्धि की भरै ।
 कराल मार छार कीय इन्द्र पाम जा परै ।
 सुधाकरिय-रेख सोहती सुभाल जास पै ।
 वही कपालि गंगजूट हों दयाल दास पै ॥ ५

सहस्र लोचनादि देव-पुष्प-क्रीट सों भरी ।
सुधूरि जास पाद-भूमि कां करै सुधूसरी ।
भुजगराजमाल सों जटानि-जूट कों कसै ।
सनेह ऐस चन्द्र-भाल को सदा हृदै बसै ॥ ६

विशाल भाल बीच में धगद् धगद् धगज् जरै ।
हुताश, ताहि माहिं जो मनोज आहुती करै ।
उराज-अग्र गौरि के विचित्र चित्र जो रचै ।
त्रिनैन ऐस रूप की सुभक्ति जीय मो गचै ॥ ७

नवीन मेघ की घटा-घिरी-निशार्ध-मावसी ।
प्रध्वान्त तुल्य जास कण्ठ की छवी हिये बसी ।
गयन्द चर्म ओढ़ि कै स्व-शीश गंग जो धरै ।
वही सुधान्शु-मौलि शम्भु सम्पदाहि बिस्तरै ॥ ८

प्रफुल्ल नील कञ्ज पुञ्ज कालिमा-प्रभा बसै ।
मुकण्ठ, नीलकण्ठ-प्राव जाहिसों भली लसै ।
स्मरारि औ पुरारि औ गजारि मृत्युनाशनै ।
भजौ यमारि अन्धकार विश्व-भै-विनाशनै ॥ ९

उमा सुमंगल-कला-कदम्ब-मञ्जरी भली ।
प्रफुल्ल माधुरी-रस-प्रवाह को व्रती अली ।
स्मरारि औ पुरारि चण्ड दत्त-यज्ञ को अरी ।
भजौ यमारि अन्धकारि जक्त भीति को हरी ॥ १०

बड़े जुवेग सों फिरे कराल व्याल फुङ्करै ।
मु त्योंजु त्योंजु ज्वाल की भरै सुभाल पै जरै ।

मंगलाचरण

धिमिं धिमिं करै मृदंग तासु मंगल-ध्वनी ।
क्रमानुसार नृत्यकार की रहै बिजै बनी ॥११

पषान पुष्प सेज में भुजंग मुक्त-माल में ।
सुरत्न रेत-पिण्ड में अमित्र मित्र-जाल में ।
तृणाऽरिविन्दनैन में प्रजा महीप में सजौं ।
कवै समान भाव, हीय शङ्करै सदां भजौं ॥१२

कवै सुगंग तीर कुञ्ज में कुटीर छाय कै ।
शिरै जु राखि अञ्जली स्वदुर्मती बिहाय कै ।
विलोल लोल लोचना शिवाललाट में लग्यो ।
“शिवेति” मन्त्र कों रटौ सदा सनेह सों पग्यो ॥१३

सुरेन्द्र-अप्सरानि-शीश-गुच्छ-मल्लिकानि सै ।
भरै पराग सों मिल्यो प्रस्वेद देह जा लसै ।
बढ़यो सु ताहि सों अपार कान्ति पुञ्ज जो भरै ।
निशा दिना जु मो हिये वही प्रमोद सञ्चरै ॥१४

कराल वाङ्वाग्नि-रूप-कष्ट-पुञ्ज जो दरै ।
महाष्ट-सिद्धि-कामिनी मिली सुमंगलै करै ।
सशम्भु वाम नैन गौरि व्याह की ध्वनी धजै ।
“शिवेति” मन्त्र मुख्य सो करै जु विश्व की बिजै ॥१५

करै जु पाठ “ॐ नमः शिवाय” जुक्त जास कौ ।
सदां हरै कलेश-पुञ्ज चन्द्रचूड़ तास कौ ।
प्रवीन पीन-प्रेम के प्रकाश सों हियो भरै ।
बँधाइ धीर ‘सत्यदेव’ पीर भीर कों हरै ॥१६

पूजा समे सरस रावण काव्यमाला ।
जो चित्त दै पढ़हि भक्त प्रदोष काला ।
गौरीश ताहि गज द्रव्य तुरंग नाना ।
देवै सहर्ष मन जासु यही प्रमाना ॥१७

११

शिव महिम्न स्तोत्र

पावन परम तव महिमा को पारावार,
अगम गमार कोउ पार यदि पावै ना ।
आचरज कहा, क्यों कि ब्रह्मादिक हू की गिरा,
थिरकि तुम्हार गुन गान गन गावै ना ।
निज निज मति अनुसार जो करी जुहार,
सकल सफल कछु दूषन दिखावै ना ।
शंकर ! विनय मम कवित विभूषन तौ,
सत्य जग अपवाद औगुन जनावै ना ॥१॥

वानी मन गम्य का को नाहि आप सों इतर,
पञ्चभूत-जन्य यह सकल संसार है ।
किन्तु मञ्जु मृदु तव सुजस मरम अति,
मन बच करम अगोचर अपार है ।
वेद भेद जाने बिन विपुल चकित चित,
निहँचे सकत कर, तासु ना अधार है ।
कौन सों वरनि जाइ, कौन विधि गुन्यो जाइ,
अकथित जग जासु विषय प्रकार है ॥२॥

सोमित सुखन्द-लगी भूषित पियूष भरी,
 कोमल अमल कल चारु रस सानी है ।
 शम्भु जू हरै न औ करै न आचरज तव,
 मन सुर गुरु बानी जगत बखानी है ।
 आप गुन सागर नै नागर सकल विधि,
 ब्रूतौ न हृदय मम निहँचे समानी है ।
 मनमथ मथन, तो गुन कों कथन करि,
 बानी होइ पावन सुप्रिय, जिय ठानी है ॥३॥
 तो विरद वर्ननीय तीन वेद सों वरद,
 जग कों जो थिति लय पालन करन है ।
 बैभव लसत तव सत रज तम मय,
 त्रिवरग देन दुःख द्वन्द कौ दरन है ।
 मन्दमति कोऊ कलपित कहि जाहि,
 पहरावत प्रचुर मिथ्या दोष आभरन है ।
 संभव न दोष तव पेश्वरज निरमल,
 पै सोई अभागो निज सुकृत हरन है ॥४॥
 कहाँ कौन तन सों, उपाइ कहौ किन सों,
 सृजत किन कारन सों विधि क्यों अनंत लोक ।
 ऐसी कुतरक तव पूरन विभव मधि,
 करत अजान जड़मति नित अध ओक ।
 अमित अखंड तव अचल प्रभाव प्रभो,
 ताकर प्रभाव को सकत कोऊ कैसे रोक ।
 सामां लोक सृजनु की चाहिये न कछु तहाँ,
 केवल प्रताप बल विरचै सबै अटोक ॥५॥

अवयव सहित भू आदि जो हैं लोक सब,
 ते हैं का स्वयं उत्पत्ति-वान मानिये ।
 मानि लेंहि यदि यह तऊ बिन करता के,
 संभव न जग सृष्टि विधि अनुमानिये ।
 अथवा अनीस निरमित जे भुवन सब,
 कौन कौन सामग्री समैटि तहँ आनिये ।
 जासों जग-करन तिहारे होन में जो जन,
 संशय करत ताहि मतिमंद जानिये ॥६॥
 वेद न्याय सांख्य शास्त्र पुनि शैव वैष्णव ये,
 पाँचों मत मन भिन्न भिन्न रुच भावतीं ।
 किन्तु तुम सब के हो एक पूज्य परिणाम,
 प्रेमधाम भज तोहि तरक विलावतीं ।
 ज्ञान-तंत रसवंत राखतु मही अनंत,
 तुम में सकल मति मग नित धावतीं ।
 जैसे न्यारी न्यारी नदी सरल कुटिल पथ—
 गामिनि मुदित अन्त सिन्धु में समावतीं ॥७॥
 भूतनाथ ! अति बूढ़ो वरद धरै सुव्याल,
 अंगनि वभूत दंड औ कपाल आजही ।
 मंत्रविद ! तन्त्र उपकरन तिहारे यह,
 किन्तु देत जग को विभूति अनयास ही ।
 भोगो क्यों न अपु तुम समरथवान है कै,
 सब ते बड़ो ही जग आचरज है यही ।
 आतम रमत परमातम तिन्हैं विषम—
 विषै मृग तृष्णा नाहिं भूलि के भ्रमावही ॥८॥

कोऊ कोऊ मतिवान कहत जगहि ध्रुव.
 कोऊ कोऊ अध्रुव ही मानि के बखाने हैं।
 चल औ अचल जाहि अपर बतावत हैं,
 किन्तु वे प्रमान सब दुविधा समाने हैं।
 याही चला-चली भ्रम-पूरित विषय मधि,
 थंभित अचम्भित सों लज्जा उर आने हैं।
 किन्तु दीठ बकवादी वानी तव रस सानी.
 प्रस्तुति करत अति मोद मन माने हैं ॥६॥
 लखन तिहारे वर वैभव को आदि अन्त.
 यत्न सों विरंचि हरि सुरग पताल गये।
 तेज वायु पुंज युत रावगं स्वरूप लखि,
 बिन आंर छोर लहि मन विस्मित भये।
 पुनि दोउ बैठि, उर तुमहिं मनाइ निज,
 विनय करन लागे पूरे प्रेम सों छये।
 विफल कभू ना होति गिरीशि तिहारी सेवा,
 शंका श्रम दूर कर दरस तिन्हें दये ॥७॥
 दस भाल जो पुरारि बिन पुरुषार्थहि.
 रिपुन हराइ जीत्यो त्रिभुवन आप है।
 मारि सुरासर बस कीन अति दीन करि,
 छायो लोक लोकनु अपार तेज ताप है।
 समर-खुजारि-परबस धारि भुज निज,
 अभय प्रभाव पूरयो प्रगट सदाप है।
 यह भाल-कंज-माल सों सप्रेम जास कृत,
 तव पद पंकज सुपूजन प्रताप है ॥८॥

प्रबल प्रचण्ड तप करन के कारन सों,
 भुजन को 'पुंज' अति घोर बल पायो है ।
 आपके समेत हर आपको सुवासथल,
 कलित कैलास इन सहज उठायो है ।
 एते पै जो रावन की कछु न बड़ाई भई,
 लोक परलोक जास अपजस छायो है ।
 हेतु यह, बढ़ि नीच सज्जन दया को पाइ,
 इतराइ मन नित ओछो ही कहायो है ॥१२॥
 अंग में अनंग छार सुठि भाल बाल-चन्द,
 सोहत जयति गंगधार रस-भीनौ है ।
 ऐसो रूप ध्याइ पद पूजन प्रताप पाइ,
 त्रिभुवन बानासुर बस कर लीनौ है ।
 अचरज कहा यदि सुन्दर पुरन्दर की,
 पदवी का प्रगट निरादर जो कीनौ है ।
 वामदेव रावर चरन जिन सीस नायो,
 नेह सों मुदित तिन सरवस दीनौ है ॥१३॥
 कंचन कुधर रई बासुकी की नेती गहि,
 सुरासर दोऊ जब सिन्धु लागे मथने ।
 प्रगट्यो प्रचण्ड रूप प्रबल हलाहल जो,
 ताके तेज तीछन के मारे लागे जरने ।
 असमै प्रलय गुनि व्याकुल विपुल जिय,
 जीव आस तजि तव पास लागे भजने ।
 ता छिन अकोप धारयो कालकूट कंठ निज,
 नीलमनि लखि ओष ताकी लागे लजने ॥१४॥

मंगलाचरण

जाके सर पैने लागि त्रिभुवन-वासिन के,
 तन मन बेधि निज करत प्रबल पीर ।
 साधारन देव जान तुम पै सो कंदरप,
 सदरप वार कियो मानि अपने को वीर ।
 तासु मान मद मथ सहज त्रिलोचन जू,
 मद-न बनायो सांचो छार करि ता सरीर ।
 बसी की हँसी करे सो अपुही मरत मूढ़,
 बहत यही है जासों सीख सीतल समीर ॥१५॥

ताण्डव करत शिव जब जग रच्छन कों,
 पदन की धमक पताल धरा धसि जात ।
 ऊपर कों तुंग भुज परिघ घुमावत में,
 विष्णु पद प्रबल नखत टलमल जात ।
 सीस जटा लटनि सबद सटकारे सुनि,
 थिरकि थिरकि बेर बेर नाकि रहि जात ।
 टेढ़ी खीर प्रभुता तिहारी है प्रभो परम,
 तरल तरंग तास काहू पै न जानी जात ॥१६॥

तारागन फेन-जुत-सलिल-प्रवाह सुठि,
 विस्तरित व्योम व्यापि जो अथाह छाये है ।
 आप सीस पर गवरीस सोई राजत है,
 ओस कन जिमि कंज दल में सुहायो है ।
 पै उतेक बन बन्यो पारावार कंकन सो,
 दीपाकार जगत चहुँघा घेरि आयो है ।
 जासन करन जोग अनमित दिव्य तव,
 दीरघ अमित तन जन मन भायो है ॥१७॥

धरा को बनाइ रथ, सूर चन्द्र चक्र जुग,
 चतुर विरंचि निज सारथी रच्यो विचारि ।
 हिमवत परवत चाप पै चढ़ाइ इन,
 परित्यंचा निज चक्रपानि चण्ड को सम्हारि ।
 तिनुका समान अति तुच्छ त्रिपुरासुर पै,
 चढ्यो कोऊ कहत वृथा ही एतो ठाठ धारि ।
 कुमति न जानत कि शिव स्व-अमोघ-बल,
 लीला ही दिखायो सरसायो जग में पसारि ॥१८॥

पूजन चरन तव गुन-ग्राम घनश्याम,
 सहस कमल लै कनक थारी धरै आन ।
 आसन पै ज्यों ही अरचन चरचन बैठे,
 घट्यो एक कोकनद अवरेख भक्तिमान ।
 ताही छिन नैन-कंज कर-कंज सों निकारि,
 कंज-नैन पूरन महस कीये मोद मान ।
 राखत कुचक्र सों सुदरसन चक्र सम,
 सोई भक्ति त्रयलोक निरत विराजमान ॥१९॥

यज्ञफल-दैन, मैन-रिपु आपही कों एक,
 जान जन वेदनि भरोसे कर्म को करै ।
 क्रिया-रूप यज्ञ जब पूरन विमल होत,
 आपुही तुम्हारो रूप विस्वरूप संचरै ।
 'करम ही देत फल' कोऊ जो कहै कदापि,
 करम पुरुष बिन संभव न ये परै ।
 जासों नाना अभिमत जगत में देनहार,
 शंकर उदार नित पीर भीर कों हरै ॥२०॥

मंगलाचरण

क्रिया-दत्त दत्त-प्रजापति सो चतुर चारु,
 स्वामी देहधारिण को जैसो यजमान है ।
 गुनी मुनी मंजुल बनाये जहाँ आचारज,
 सभासद सुभग स्वयम्भू के समान है ।
 तौहू अति आचरज धीर वीर भद्रवीर,
 भंग कियो मख लूटि सकल सामान है ।
 यज्ञ-फल-देन हारे आदर तिहारे बिन,
 होत सब जग कर्म विफल प्रमान है ॥२१॥
 काम-बस विधि निज दुहिता पिछार धाया,
 मृगी बनि भाजी वे हू भाजे मृग-रूप धार ।
 लखि कें अनीति नाथ ! कर ले कोदंड सर,
 मारन मृगहि लागे करि धर्म को विचार ।
 तवै उर हारि भकमारि भाज्यो प्रजानाथ,
 व्याकुल विपन्न भयभीत स्वर्ग के मँझार ।
 धनुवान आपके सजन रखवारी हेत,
 देत दुरजन का बड़ी ही कड़ी दुतकार ॥२२॥
 छार कियो मदन अतन तुम, पुनि आधौ,
 अतनहिं तन दै स्ववपु में लिया मिलाइ ।
 रूप-मतवारी प्यारी तव लखि निज मन,
 विभचारी ब्रह्मचारी हर को लिये नृदाइ ।
 क्यों तो मार छार कियो पुनि क्यों उधार कियो,
 रीझि किमि ताकों आधे तन में लियो समाइ ।
 भोरी भारी जाया महामाया यह आप ही की,
 अगम अपार तव महिमा न जानी जाइ ॥२३॥

तन में चिता की भस्म कंठ मुंडन की माल,
 भूषण भुजंग साजि मंजुल बनायो है ।
 संग में वैताल प्रेत दै दै भनकीली ताल,
 समसान कीड़ा थल असुच सुहायो है ।
 निपट अमंगल के साजे साज बाज सवे,
 तो हू भूत-भावन स्वरूप मन भायो है ।
 मंगल को सागर मुदागर भगत हेतु,
 ध्याये तैं अनन्द कन्द नित वेद गायो है ॥ २४॥
 प्रान-पौन रोकि चित चंचल ठैराइ ठीक,
 अकथ अचल तत्व जांगी जाहि ध्यावे है ।
 छुके रोम रोम ता अनन्द सों प्रसन्न मुख,
 नैन निरमल नेह नीर में डुवावे हैं ।
 भक्ति सुधासार उर वसुधा बहाइ निज,
 जन्म-जाल जोनि पाप-पुंज बिनसावे हैं ।
 मोक्षप्रद सांई तव दिव्य रूप रावरो है,
 पाइ जा दरस जग जिय हुलसावे है ॥ २५॥
 रवि ससि वायु नीर अग्नि अवनी अकास,
 आदि जड़ चेतन जा वस्तु दरसात हैं ।
 ते सबै प्रकासमान आप रूप ही सों ईस,
 परिपक्व मतिमान मन की ये बात हैं ।
 कह्यो करौ कोऊ भिन्न-भिन्न भाँति सो बनाइ,
 इन ओर ध्यान कोर हमरी न जात हैं ।
 दीसत जगत को पदारथ न हमैं कोऊ,
 जामैं तव अरथ स्वरूप न सुहात हैं ॥ २६॥

अक्षर अ-कार आदि वरन सपूरन जो,
 स्वरित उदात्त अनुदात्त में समानौ है ।
 सुरग महीतल पताल तल व्यापि रह्यो,
 विधि हरि रुद्र रूप जा स्वरूप सानौ है ।
 निर्गुन निरविकार निखिल निरंजन जे,
 जनमन-रंजन तुरीय तव बानौ है ।
 पृथक पृथक ताहि गहत मिलत पुनि,
 करत प्रणव सोई तव गुन गानौ है ॥२७॥
 “भव” सों सृजत भव, “शर्व” सों नसत ताहि ।
 “रुद्र” सों रुदन तुम ठानत अपार हो ।
 पालन को “पशुपति” औ “सह महान” सन,
 परम विशिष्ट तत्त्वमूल के आधार हो ।
 “उग्र” सों सरोस बनि दुष्ट दल घालत हो,
 वैभव “ईशान” सों बढावत अछार हो ।
 भीम सों भयंकर विदित आठ नाम धारि,
 मन अभिराम छित शंकर ! उदार हो ॥२८॥
 दूरि हू सों दूरि जो नगीच है नगीच हू के,
 लघु सों अतीव लघु सूक्ष्म अकाम है ।
 महत महत हू सों बाल युव वृद्ध वैस,
 धरत निरत गुनग्राम छविधाम है ।
 तत्त्वमसि रूप त्रिनयन किरपा-अयन,
 व्यापक सकल थल सोहत ललाम है ।
 अछदम पावन सुहावन सकल विधि,
 मृत्युञ्जय पूज्य पद पदम प्रनाम है ॥२९॥

जगत उदय काल वैभव को जाल छाड़,
 रजोगुन-पुंज-जुत भव को नमो नमः ।
 खेल मात्र ताहि संहरत रस सों भरत,
 तमोगुन के निकुंज हर को नमो नमः ।
 मनोहारी भारी जग जन-मन-सुखकारी
 सतोगुन-गुंजधारी मृड को नमो नमः ।
 भोगत परम पद अमद रहत नित,
 तीनों गुन सों बिलग शिव को नमो नमः ॥३०॥
 कहाँ ये अचेत चेत राग द्वेष मोह सन्यो,
 जड़ता बिबस क्लेश भोगत असेस है ।
 कहाँ तेरो गुन सों परे में महिमा मरम,
 परम अथाह परवाह रस देस है ।
 जे हिये विचारि भीत कम्पित चकित मन,
 तव गुन हेरत प्रवीनता न लेस है ।
 भक्ति शक्ति मोहि दीनी वाक्य पुष्पमाल सन,
 पुजवाये तव पद पदम विसेस है ॥३१॥
 कज्जल पहार डारि जल-निधि वारि बीच,
 घोरि घोरि मंजु मसि भाजन भराइ ले ।
 रुचिर सँवारि सुठि विस्तरित अचला के,
 खोलि खालि परत सु पत्तिरा सजाइ ले ।
 सुन्दर पुरन्दर के नन्दन सुकानन सों,
 पारिजात की उपार लेखनी बनाइ ले ।
 लहि एती सम्पदा सदा ही लिखे सारदा जो,
 गाइ ले न तव गुन पार कों न पाइ ले ॥३२॥

पुष्पदन्त विरचित हर महिमा की गाथ,
 हरत सदा जो जन मन को विषाद है ।
 पढ़त सनेह, मोद भरत, करत सुख,
 विहरत हृदय पसारत प्रह्लाद है ।
 जितने शिवस्तोत्र सब में सिरोमणि जे,
 गुनिगन स्वीकृत विषय निरवाद है ।
 ताकौ मत्स्यनारायण द्वारा सुठि सम्पादित,
 मंजु मनहरन विसद अनुवाद है ॥३३॥

१२

विश्वरूप-दर्शन

(भगवद्गीता के आधार पर अ० ११ श्लो० १२-२२)

देह तव मधि, देव ! देखौं पूर्णता सों आज ।
 अखिल विश्व विशाल के बहु विविध जीव समाज ।
 सुर, ईस कमलासन विराजत जगत-पितु सतभाय ।
 ऋषि, मुनी, अरु तत्तकादिक, दिव्य फानि-समुदाय ॥ १ ॥
 अगणित भुजा अरु उदर आनन, नयन जास अनूप ।
 अस आपकौ मैं लखहुँ, पूरन चहुँ अनन्त स्वरूप ।
 दीसे न जाके आदि मध्यऽरु अन्त को कहूँ लेश ।
 अस विश्व-व्यापक रूप देखौ नाथ तव विश्वेश ॥ २ ॥
 चमकत मुकट सिर, कर गदा, अरु चक्र आभावान ।
 चहुँ ओर माँ, जनु तेज की जगमगत ज्योति प्रधान ।
 ज्वाल किम्बा सूर्य की दुति अप्रमेय लखाय ।
 देखहुँ दरस तव जो कठिनता सन निहारथौ जाय ॥ ३ ॥

तुमहिं अक्षर ब्रह्म पूरन वेदितव्य विचित्र ।
तुमहिं जग के परम आश्रय एकमात्र, पवित्र ।
तुमहिं अव्यय नित सनातन-धर्म के प्रतिपाल ।
मेरे मते तुमहीं सनातन पुरुष सद-गुन-माल ॥ ४ ॥

उत्पत्ति-थिति-लय रहित तुमही अमित बल के ऐन ।
बाहु अगनित लसत तव, रजनीस सूरज नैन ।
तेजमय तव मुख लखौं जनु दीप्त अनिलाकार ।
कढ़ि किरन जिह की चहुँ तपावत जगत को अनिवार ॥ ५ ॥

आकाश, भुवि, यह लखत जेतिक अन्तरिक्ष अपार ।
सब दिसिन में बस इक तुम्हरे तेज को विसतार ।
तव उग्र अद्भुत रूप लखि, भयभीत अति घबरात ।
पावत विथा तिहुँ लोक के भगवन सबै दरसात ॥ ६ ॥

सकल देव-समूह आवत तो शरण में नाथ ।
आरत पुकारत, कोउ तुमको सभय जोरत हाथ ।
स्वास्त्यन-युत बहु प्रकारन सिद्ध-ऋषि-मुनि-वृन्द ।
करत तव अभ्यर्थना सब गाइ प्रस्तुति छन्द ॥ ७ ॥

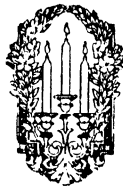
रुद्र, वसु, आदित्य, विश्वेदेव साध्य, समीर ।
अश्विनी युग्मज, पितर, गन्धर्व, यक्ष, सुवीर ।
असुर, सिद्ध-समूह जेतिक जगत मांहि लखात ।
सबहिं के सब तुमहिं हेरत परम अचरज खात ॥ ८ ॥

अगनित दृगानन धरत जो अरु उदर जासु अनेक ।
भुज, पद, महाबाहो ! न जाके ज्ञाति मोहि कितेक ।

ऊर्जित परम अस रूप तव बहु डाढ़ सन विकराल ।
लखि लोक सब, मै हूँ तथा, पावत बिथा यहि काल ॥ ६ ॥

आकाश-चुम्बत जगमगत दुति वरन वरनाकार ।
विवृत आनन, नयन दीरघ, तेजयुक्त अपार ।
अस लखि तुमहिं मम हृदय चंचल लहत भारी पीर ।
शान्ति गई कितकों न जानें, छाँड़ि मोहि अधीर ॥ १० ॥

बहु डाढ़ सन विकराल प्रलयानल प्रवल अनुहारि ।
आनन अनेकनि अति भयंकर अब त्वदीय निहारि ।
दिसि-भूल सौ, सुधि बुधि हिरानी हृदय धरकत आज ।
देवेश होहु प्रसन्न, जग के आदि अरु अधिराज ॥ ११ ॥



देश-दशा

देश-दशा

१

भारत बन्दना

हमारा प्यारा हिन्दुस्तान ।

नयन का तारा हिन्दुस्तान ॥

वो ही बस घनश्याम की, स्वाति-बुँद रस-एन ।

चाहें उसको ही विकल, हम पपिया दिन-रैन ॥

चैन बस देवै उसका गान ॥

वो ही रस का सार है, निरमल नित्य नवीन ।

प्रकृति मधुर सुन्दर सरल, हम हैं उसकी मीन ॥

दीन का वह जीवन-धन-प्राण ॥

२

करुण क्रन्दन

कौनै सुनाउँ अपनो दुख हाय जाई ।

ना तात मात प्रिय भ्रात परै लखाई ।

डारी अपार ममता तजि मित्र सारी ।

कोऊ न आवत ढिगै, लखि के दुखारी ॥१

कोऊ दिना वह रह्यो जगभूष सारे ।

आये सभीत पद-सेवन दर्प मारे ।

नाये स्वक्रीट रुख देखत जा अगारी ।

सोई सदैव अब दीन, दया भिखारी ॥२

उच्चाति-उच्च पद जास सदा सुहायौ ।

गम्भीर धीर अति वीर समस्त गायौ ।

नीचेहु बैठन कहूँ तिहि ठौर नाहीं ।

अत्यन्त भीरु बनि रोवत जीय माहीं ॥३॥

जाग्यो जहाँ सुभग सुन्दर साम-गान ।

चर्चा चलीं विमल सोचत शास्त्र-ज्ञान ।

गावैं तहाँ वटु सदा गनिका-कहानी ।

भूँठी कथानि रुचि राखत मोद-मानी ॥४॥

श्री श्री कणाद शुक्र जेमिनि व्यास शिष्ट ।

दाता दधीच भृगु गौतम औ वशिष्ट ।

ब्रह्मण्य देव कपिलादिक जो अमानी ।

हा ! हा !! पवित्र तिनकी सुकथा भुलानी ॥५॥

स्वच्छन्द संस्कृत करयो जहँ पै विकास ।

झायो समस्त जग उज्जल ता-उजास ।

ताकों विहाय जु असंस्कृत अन्य भाषा ।

देखैं पढ़ैं तब बढै कस हीय आशा ॥६॥

सर्वत्र दीपत रहे जहँ अग्नि-कुण्ड ।

सम्मान संग बहु दान दिये बितुण्ड ।

दीसैं तहाँ चिलम चुट विराजमान ।

कल्याण-यान सम पावन पीकदान ॥७॥

हर्षे जहाँ सकल सज्जन-दर्श पाइ ।

भारी विचार “ढिंग नीच न बैठि जाइ” ।

जी सों तहाँ लखत बार-बधूनि चित्र ।

तिनके गहैं चरण, बात बड़ी विचित्र ॥८॥

जा की कृपा बस बँधो दृढ़ राम-सेतु ।
कल्याण-दा कल प्रदर्शनि-कीर्ति-केतु ।
प्राणातिरिक्त मम शिल्प-कला पियारी ।
कोऊ न लेइ सुधि डोलति हाय मारी ॥६

जो भ्रातृ-भक्ति यहँ की चहुँ ओर छाई ।
विद्रोह नासनि विकासनि सन्मिताई ।
ताकों निकार संग मत्सर आइ भारे ।
घारे विरोध बल सों अपने नगारे ॥१०

जा धर्म के जपत, पाप त्रिताप नासैं ।
सद्भाव प्रेम हिय में रुचि सों प्रकासैं ।
दुर्भाग्य सों अपन सद्गुण हाय भूल ।
सो धर्म भौ कलह क्रोध विरोध-मूल ॥११

जा कोउ देश हित बात कहूँ चलावै ।
विक्षिप्त सर्व मत में नित सो कहावै ।
वाकी भई कुमति, वा तिन बुद्धि बक्र ।
जानी न जाइ कछु र कलि-काल-चक्र ! १२

जा शीतला रुज-विदारणि शील-पैनी ।
कृष्ण-प्रिया जगत-मा कृषि-शक्ति-दैनी ।
ता धेनु-प्राण हित एक छदाम नाहीं ।
चाहैं लुटे स्वधन नित्य कुमार्ग माहीं ॥१३

जा कोउ सज्जन कहूँ त्रुटि कों सुधारैं ।
तो फेरि औ नरनि की लखिये बहारैं ।
कोरी प्रलाप वकवादि बहाइ धारैं ।
आलाचना करत द्वेष निकारि डारैं ॥१४

विप्रावतंस वटु-वृन्द कहूँ पढ़ें ना ।

रक्षा जु क्षत्रि-कुल हूँ तिनकी करे ना ।

निःशास्त्र शस्त्र बल आज अतीव दीन ।

जैसे मणी बिन फणी, जल-हीन मीन ॥१५

मौजें उड़ें खलनि की, करि मित्र भेद ।

मारे फिरैं मुजन, नित्य उठाइ खेद ।

उत्साह बर्द्धि तिनके चित ना सम्हारौं ।

तौलौं बताउ जिय में कस धीर धारौं ॥१६

सीता सती गुणवती सत शीलधामा ।

दुर्गावती कुलवती युवती ललामा ।

भाँसी-भुवाल-पतिनी अति वीर-वामा ।

लेवै न हाय ! तिनको कहूँ कोउ नामा ॥१७

“जोनार्क” शुद्ध गुन-गान सबे उचारैं ।

पै हाय ! यों कबहु ना हिय में विचारैं ।

कैसेँ हमार गृह होवहिं ऐस कन्या ।

जासों लसे विमल भारतभूमि धन्या ॥१८

जानै कहा अपढ़ बालन कों पढ़ावैं ।

देशोपकार तिनके उर न दढ़ावैं ।

काटैं विमूढ़ मम उन्नति-मूल हाय ।

दुर्देव-राज ! तुम सो न कछू वसाय ॥१९

चाहैं परे अपन पै विपता अपार ।

चंकार ना करत, शासक के अगार ।

काँपै विपन्न अति, सूभत ना उपाऊ ।

सम्पूर्ण मानत भयङ्कर ताहि हाऊ ॥२०

देश-दशा

सन्मान्य कारुणिक शासन मंजु पाइ ।

हा हा सकै रुदन आरत ना सुनाइ ।

सन्तान ऐस अति दुर्बल-चित्त जाकी ।

लीजै विचारि कुदशा निज हीय ताकी ॥२१

मीठी बनी, चसकदार, बड़ी रसीली ।

स्वादिष्ट, ना तनक हू करुई कसीली ।

सों खांड त्यागि, नित खांड बनी विदेशी ।

लीलैं, स्वधर्महिं तिलाञ्जलि दै विशेषी ॥२२

चाहैं नमैं, पलक में धन को बहाय ।

धारैं प्रदेश कर वस्तुनि पूर्ण चाय ।

डारैं स्वदेशज पदार्थ परैं, हटाय ।

का पाप पाइ पलटी मति हाय हाय ॥२३

व्यापार जो सत महायक प्राण प्यारो ।

जाको रह्यो परम मोहि सदा सहारो ।

ता की कथा अकथ आज कही न जाती ।

हा हा अभाग, मम फाटत जो न छाती !!!२४

गावैं निपोलियन वीर गुणानुवाद ।

पै ना करैं स्वकुदशा पर हा विषाद ।

सिव राज नाम कहूँ पूरव पुण्य पाई ।

देखौ अरे निकरि कैं मुख सों न जाई !!!२५

देशाभिमानहिं समाद पयोधि बोरी ।

फेरयो समेटि चित सेवन-वृत्ति ओरी ।

खोयो स्वजीवन बिना कछु नाम काम ।

स्वातन्त्र-प्रेम तजि हाय भये गुलाम ॥२६

ना कोउ व्याप्त सब ठौर स्वदेश-भाषा ।
 यों सोचि होत जिय में अति ही निराशा ।
 मो नाम-राशिनि प्रकाशिनि शुद्ध भावै ।
 हिन्दी प्रचारि अब ये त्रुटि को मिटावै ॥२७

कार्थेज रोम शुचि ग्रीसऽरु मिश्र देश ।
 जापान शुभ्र-गुण जापत जो विशेष ।
 "कैसे भये अवनि पे सब सो महान्" ।
 ना दैहिं सां तनक हू इत और ध्यान ॥२८
 एलेल० बी० निपुण प्लीडर विज्ञ बी० ए० ।
 एमं प्रसिद्ध धनवन्त समाद हीण ।
 कांग्रेस जात प्रति वर्ष छटा प्रकासी ।
 पै ना कछू सुनत निर्धन ग्रामवासी ॥२९

का वे नहीं बसत भारतवर्ष माहिं ?
 किम्बा कछू सुनन को तिन सत्व नाहिं ?
 छाये जहाँ अस अपार कठोर नेम ।
 कैसे बड़े कहहु तत्र स्वदेश-प्रेम ? ॥३०
 शङ्कर, कुमारिल, जु आदि स्वधर्मधार ।
 कीन्हों स्वदेशहित-पालन को प्रचार ।
 कर्त्तव्य, धर्म, श्रुति ज्ञान बिना गमार ।
 सन्यासि-भीर अब हाय समाज-भार ॥३१
 पाण्डित्य-पूर्ण सुधुरन्धर ज्ञानवान ।
 सत्-शीलवान जिन राखत सर्व मान ।
 ऐसे अनेक जन काल-कराल-ग्रास ।
 हा ! हा ! भये, कस न होंहु कहो हतास ॥३२

जो तीर्थ जाइ तहँ पै बसिबौ विचारौ ।

जीर्णातिजीर्ण मठ बैठि, तहाँ निहारौ ।

ताकौ "गिरै न कहूँ ऊपर" सोचि त्यागौ ।

लै शीघ्र प्राण अपने भयभीत भागौ ॥३३

कैसी करूँ, कह करूँ, कित ओर जाऊँ ।

सूझे न ठौर, जित आश्रय नैक पाऊँ ।

लम्बी बड़ी अति, बिथा कबलौ सुनाऊँ ।

जासों स्वचित्त हरि-चिन्तन में लगाऊँ ॥३४

माधुर्य-माल मनमोहन शक्ति जाल ।

भक्तार्ति-भीर-भय-भञ्जन सर्व काल ।

पद्मापती प्रणत-पालक प्रेम-पुञ्ज ।

आनन्द कन्द करुणा-कर कान्ति-कुञ्ज ॥३५

संसार सुन्दरपना सबरौ सकेलि ।

जाकी रची मधुर मूरति प्रेम-बेलि ।

निश्चिन्त्य, तास तुम देखत जात प्रान ।

शोकार्त कौन कहु भारत के समान !!! ३६

जाकी चढ़ी विभव-गौरव-दिव्य-गाथ ।

आश्चर्य-युक्त जग सोचत नाइ माथ ।

ताकी गिरी दुख भरी कुदशा निहारी ।

जागी दया न तव जीय कहा विचारी ॥३७

लागै न तोहि दुख टारत नैक देरी ।

प्रह्लाद औ गज पुरान कथा घनेरी ।

पै हाय आज तव आलस छोर नाहीं ।

प्यारी स्वजन्म शुचि-भारत-भूमि माहीं ॥३८

साँचो मदीय दुख, हीय निजै प्रमानी ।
दारिद्र-सिन्धु मधि डूबत मोहि जानी ।
आबौ हरी, यहि घरी सुधि धाइ लीजै ।
पाषाण जीय तव क्यों न प्रभो ! पसीजै ? ॥३६

मेरे सुधार अनुरक्त जितेक भक्त ।
सत्पुत्र और शुभचिन्तक बीच जक्त ।
तिनकों सदा सबल निर्भय नाथ कीजै ।
शोकाऽन्वि सों मम उधारन शक्ति दीजै ॥४०

— नवम्बर १९०७

३

भारत-माता

लीजिये सुधि मेरी ।
कहाँ कृष्ण करुणानिधि केशव गाय सिंह ने घेरी ॥
सब प्रकार असहाय, हाय मैं, जग कहाय तव चेरी ।
चढ़ी सभ्यता शिखिर कहाँ की कहाँ नाथ यों गेरी ॥
आर्य्य रत्नगर्भा यह निष्प्रभ दारिद्र दीन घनेरी ।
“स्वर्गादपि गरीयसी” अब पददलित भस्म की ढेरी ॥
रसना नाम करति निज साँचो, ज्यों-ज्यों आरत टेरी ।
जब-जब भार परथो प्रभु तब, सब विधि भू-विपति निवेरी ॥
सो निज बानि कहाँ बिसराई, किहू कारन यह देरी ।
बिगरेँ काज गाइ है को सत कीरति कीरति तेरी ॥

हिन्द-वन्दना

जय जय अनादि अनमधि अनन्त,
जय जय जग-वन विकसत बसन्त ।
जय जय अच्युत अनवधि अधार,
जय जय जग-नाटक-सूत्रधार ॥
जय जय सुन्दर सुखमा-रसाल,
जय जय शरणागत प्रणतपाल ।
जय जय धुराण धृति धर्म-गेन,
जय जय जगदीनहिं दान देन ॥
जय जय जग-नन्दन पारिजात,
जय जय दश दिश बन्दन प्रभात ।
जय जय थल श्यामा-श्याम-केलि,
जय जय सुखधामा प्रेम-वेलि ॥
जय जय जग प्रचुर पुनीतकाय,
जय जय अमान नित मान पाय ।
जय जय विनोद सुरसरी श्रोत,
जय जय श्रीधर विद्युत उदोत ॥
जय जय अथाह सत्यानुराग,
जय जय प्रवाह पूरण प्रयाग ।
जय जय चञ्चल मन नहिं घरीक,
जय जय प्रभु चरणन चञ्चरीक ॥

हृदय तरङ्ग

जय जय अकाम नित न्याय-धाम,
जय जय जग कर शोभाभिराम ।
जय जय दयार्द्र प्रेमाश्रु पूर ।
जय जय क्रूरन संग नित अक्रूर ॥
जय जय प्रधान सब गुणनिधान,
जय जय प्रवीण मंगलविधान ।
जय जय पतिव्रता पुण्य-पाँति ।
जय जय अकलङ्क समस्त भाँति ॥
जय जय परिपूरण ब्रह्मनिष्ठ ।
जय जय भवरुज चूरण बलिष्ठ ॥
जय जय अभीष्ट आनन्दकन्द ।
जय जय उल्लास अमन्द चन्द ॥
जय जय मंजुल जग-हृदय-माल ।
जय जय जगमग जग ज्योति जाल ॥
जय जय मनमोहन सौम्यरूप ।
जय जय कछु कोह न, विश्वभूष ।
जय जय जग उज्जल नवल रत्न ।
जय जय उदार साधन प्रयत्न ॥
जय जय निश्चल निष्कपट नेम ।
जय जय दम्पति अति शुद्ध प्रेम ॥
जय जय सुन्दर सद्धर्म सार ।
जय जय जग सतगुर सब प्रकार ॥
जय जय अव्यक्त अविचल सुधार ।
जय जय वसुधा मधि सुधाधार ॥

देश-दशा

जय जय सुखमय सानन्द सदा ।
जय जय प्रमोद-प्रस्फुटित पद्म ॥
जय जय ललाट हिम-शैल-शृङ्ग ।
जय जय मधुलोलुपमुकट भृङ्ग ।
जय जय चिन्तामणि चन्द्रकान्ति ।
जय जय प्रशस्त पावन प्रशान्ति ॥
जय जय कलकंठनिनादगान ।
जय जय द्विज-गो-पालक-महान ॥
जय जय सुकलाधर धरा-इन्दु ।
जय जय पद-पद पीयूषबिन्दु ॥
जय जय कलकान्ति कला कलोल ।
जय जय अमोल अति ललित लोल ॥
जय जय अद्भुत आभा अखण्ड ।
जय जय मरकतमणि-मार्त्तण्ड ॥
जय जय वसुन्धरा-छवि अल्लुद्र ।
जय जय जग-वांछा-मरि-समुद्र ॥
जय जय महर्षि-यशनिचय-थम्ब ।
जय जय समस्त जगतावलम्ब ॥
जय जय प्रताप प्रगटत प्रदीप ।
जय जय महि मण्डलमख-महीप ॥
जय जय अभिमत-प्रद कामधेनु ।
जय जय जग-मृग-मन-हरन वेनु ॥
जय जय करुणा कमनीय कुञ्ज,
जय जय प्रिय पावन प्रनयपुञ्ज ।

हृदय तरङ्ग

जय जय रसिया हिय सरल शान्त,
जय जय जग-रुचि-कामिनी-कान्त ॥
जय जय राखत निज वचन टेक,
जय जय त्यागत नहिं धर्म एक
जय जय हिय कोमल बल अमेय,
जय जय निर्भय भीषण अजेय ॥
जय जय निशंक निर्द्वन्द्व वीर,
जय जय ध्रुवसम ध्रुव अचल धीर ।
जय जय रिपुरण नहिं पीठ दैन,
जय जय धनेश मद लेश, पै, न ॥
जय जय पराक्रमी मनहु जिष्णु,
जय जय साधारण मन सहिष्णु ।
जय जय गुणगण गौरव असीम,
जय जय कराल संग्राम भीम ॥
जय जय जय-कङ्कन कर विशाल ।
जय जय प्रगल्भ रणशत्रुसाल ।
जय जय प्रण पूरण भरतखण्ड,
जय जय अरि दल नाशन प्रचण्ड ॥
जय जय खल गञ्जन विदित जक्त,
जय जय मनरंजन राजभक्त ।
जय जय त्रिभुवन विख्यात देश,
जय जय अपूर्व अतुलित अशेष ॥
जय जय नित निरमल नर-निकुंज,
जय जय पपिया “पिय पिया” गुंज ।

जय जय आरज-कुल-कीर्ति केतु,
 जय जय अनगढ़ दृढ़ वेद-सेतु ॥
 जय जय जग जीवन जन अनन्य,
 जय जय धीरज-धन-धन्य-धन्य ।
 जय जय अनभव अमलारविन्द ।
 जय जय सदैव सतदेव हिन्द ॥

५

अब उद्धार कैसे हो ?

लगी दिन रैन है चिन्ता, कि अब उद्धार कैसे हो ?
 पड़ी मझधार में भगवन् ! ये नैया पार कैसे हो ?
 चलै आँधी निराशा की न सूझे अपना बेगाना ।
 खिचैया चौकड़ी भूले प्रभो ! निस्तार कैसे हो ॥
 नदी जीवन समर की है विजय उद्देश जिसका तट ।
 पहुँच उस तक, अविद्या का ये हलका भार कैसे हो ॥
 भयानक भ्रम भँवर में पड़, गई सब मान मर्यादा ।
 हुए मदमत्त स्वारथ में सुमति सञ्चार कैसे हो ॥
 सभी कर्तव्य विसराये न निश्चय आत्मशक्ती पर ।
 भला फिर सत विचारों का अभय उद्गार कैसे हो ॥



चेतावनी

चेतावनी

१

करहु मन मातृ-भूमि अनुराग ।
जगत जगत बस तुम ही सोवत, नैन खोलि अब जाग ।
करनौ काज करन सो सीखौ, कोरी गिटपिट त्याग ।
जो परदेश-वस्तु छिन-भंगुर, तिन पर डारहु आग ।
निज कर रची वस्तु सेवहु नित, तजि मत्सर मद राग ।
चलहि अधिक दिन जो करि देखहु, कमती लागहि लाग ।
हो स्वदेश-भ्रातन को पालन, जासौ का बड़ भाग ।
मतवारे मधुकर बनि चाखहु, नागर मधुर पराग ।
श्रद्धा-सज्जी लै निज उरसों, धोय द्वेष के दाग ।
भ्रातृ-प्रेम की लै पिचकारी, चहुँदिस प्रमुदित भाग ।
घोरि एकता—रंग परस्पर खेलहु, हिलमिल फाग ।
'सत्य' ढोल-ढप लैकै रागहु, निज उन्नति को राग ।

—फरवरी १९०६

२

सुनहु सुनहु मन लगाय । कहत दोउ भुज उठाय ।
देखहु जनि भूलि जाय । भारत जन सारे ॥
निरभय धरि उर उमंग । मिलहु एक हृदय संग ।
रँगहु सकल प्रेम रंग । है कै मत-वारे ॥

तारहु निज बैर जाल । चलहु प्रथम-जनन चाल ।
 व्यर्थ होहु क्यों बिहाल । आरज - कुल - वारे ॥
 सबरो आलस निवार । त्यागहु इन्द्रिय-बिहार ।
 देश को करहु उधार । बनत अब सँवारे ॥
 नागरी पढ़ौ सप्रीति । पालहु निज-धर्म-नीति ।
 सकल चलहु स्वकुल रीति । रहहु न मन मारे ॥
 देश को दृढ़हु व्यापार । सम्पदा यही आधार ।
 जामों आनन्द अपार । अवसि होंहि भारे ॥
 ज्ञान शिल्प कों बढ़ाय । रचहु ताहि मन बढ़ाय ।
 साहस जनि तजहु भाय । रहहु धीर धारे ॥
 जां स्वदेश के पदार्थ । मोल लेहु सो यथार्थ ।
 धरहु स्वप्न मनहु पार्थ । होहु जनि दुखारे ॥
 वृद्ध संस्कृत सुहाय । सेवहु नित चित्त लाय ।
 जासों संशय नसाय । बसहिं सब सुखारे ॥
 जगहु जगहु देश भ्रात । लखहु दिवस चढ़त जात ।
 उमयो कब को प्रभात । नयन ना उघारे ॥
 निरमल उर करि उदार । कलह फूट निज बिसार ।
 भ्रातृ-प्रेम करि प्रचार । लूटहु जस भारे ॥
 जरमन इंग्लैण्ड देश । फ्रान्स अमेरिका विशेष ।
 देश पश्चिमी अदेश । देत यह पियारे ॥
 होवहु जनि प्रिय अधीर । धारहु हिय मांहि धीर ।
 हरि हैं सब पीर-भीर । मोर मुकुट वारे ॥
 भारत तब भक्त नाथ । बिलपत मानहुँ अनाथ ।
 सत्यदेव ! करि सनाथ । द्रवहु अब मुरारे ॥

३

क्या करि कृपा, प्रेम पूरित हो,
 विनय हमारी पढ़ियेगा ?
 वीर धीर वन साहस कर,
 क्या उन्नति गिरि पै चढ़ियेगा ?
 जगता है सब जगत. जातियाँ—
 उठ उठ देखौ खड़ी हुई ।
 भ्रातृ सनेह परम पुरुषारथ,
 स्वावलम्ब से जड़ी हुई ॥
 कलह. कुरीति, द्वेष, उन्नति-रिपु,
 तिन के सन्मुख अड़ी हुई ।
 जीति दीनता को निर्भे हो,
 यश फैला कर बड़ी हुई ॥
 पड़े रहोगे योंही. या जगि,
 झपट अगाड़ी बढ़ियेगा ।

क्या.....१

कैसा था वर बिभव तुम्हारा
 जय प्रताप से बना हुआ ।
 बिमल वीर रस से मतवाला,
 बिपुल जोम से तना हुआ ॥
 किन्तु न्यायनिष्ठा और करुणा
 कोमलता से सना हुआ ।

कभी न उलटा बचन सर्वदा
अपने प्रण से बना हुआ ॥
कहो, करोगे ऐसा, या बस
कोरी बातें गढ़ियेगा ?
क्या.....२

आँख उठा कर देखौ तो टुक,
कुछ का कुछ अब रंग हुआ ।
पुरुषारथ और ब्रह्मचर्य
खोने से यह क्या ढंग हुआ ॥
मान और मर्यादा-व्रत सब
भूँठ बोल कर भंग हुआ ।
चालीस सेरे बने आलसी
अच्छा संग कुसंग हुआ ॥
पड़े रहोगे यों ही या कुछ
यत्न अगाड़ी करियेगा ।
क्या.....३

सब दानों से उत्तम विद्या-दान
मुनी बतलाते थे ।
गुरुकुल ऋषिकुल खोल
आप छात्रों को मुदित पढ़ाते थे ॥
घर घर से चंदा लेकर,
नहिं पेश आराम उड़ाते थे ।

चेतावनी

जिससे हाँ अस्तित्व जाति-
जीवन का, वही सिखाते थे ॥
क्या विद्यालय खोल, देश की
अमित अविद्या हरियेगा ।

क्या.....४

मित्र ज्ञान को दबा सघन घन,
भ्रम का सचमुच बास हुआ ।
कोरी आत्मश्लाघा के वश
बिकट विरोध विकास हुआ ॥
कहाँ तुम्हारा प्रेम ? देश के
गौरव का कहाँ हास हुआ ?
कौन पाप के बदले में सर्वत्र
सुमति का नाश हुआ !!!
पड़े मरहटी किस घिस घिस में
जोम पकड़ के उठियेगा ॥

क्या.....५

बात बनाना त्याग, बनाना
काम नियम निर्मल गहिये ।
देश काल अनुसार सफलता
करने को सब की सहिये ॥
अवसर पाकर कभी न चूकौ,
स्वतन्त्र सम्मति भी कहिये ।

हो स्वदेश का भला
चिन्तवन यही सदा मन में चाहिये ॥
उठौ फड़ाके से क्या अब भी
चुपकी साधि अकड़ियेगा ।
क्या ६

४

उठौ उठौ हो भारत सोइए ना ।
सोइए ना मुख जोइए ना ॥
बीत गई जो ताहि बिसारौ ।
व्यर्थ समै निज खोइए ना ॥
देखहु उठि परदेशनि-उन्नति ।
आलस बीजनि बांइए ना ॥
कटि कसि करौ देश-उद्धारहि ।
मौज-मनोजन भोइए ना ॥
पश्चिमीय विद्या-जुगन् की ।
देखि प्रभा प्रिय मोहिए ना ॥
लखि निज ओर चेत करि चित में ।
साहस हीन जु होइए ना ॥
नैन खोलि चलि प्राण पियारे ।
बाट रसातल दोहिए ना ॥

चेतावनी

घाती घात लगे चहुँ ओरन ।
भूँठ और साँच समोड़ण ना ॥
सत्यनारायण बोझिल कामरि ।
जाकों और भिजोइण ना ॥

५

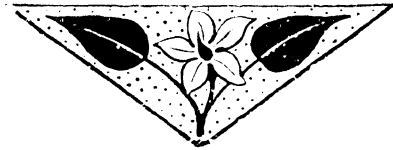
मन मूरख क्यों नहिं मानै ॥
अन्ध जगत के धन्ध फँस्यो तू रागत अपनी तानै ।
जग असार है मृग-वृष्णावत जाकों क्यों नहिं जानै ॥
कुल की कानि लगै अति प्यारी धरि उपदेश न कानै ।
ज्ञान को सोटा हिय की कुंडी प्रेम भंग क्यों न छानै ॥
भूलत भ्रमत न जानत तू कछु बिरथा निज हठ ठानै ।
माया बस है फिरै दिवानो कछु को कछु बखानै ॥
साँची बात कहत जो कोऊ लरत अधिक रिस सानै ।
सत्यनारायण “मैं तू” तजिकर करु गोविन्द गुन गानै ॥

६

पियारी तेरे गौने के दिन रहे चार ।
प्रणव शब्द की बेँदि भाल पर, ज्ञान सुअंजन डार ।
भौह धनुष चख बाण चढ़ा कर, काम क्रोध मद मार ॥
निर्भयता सिन्दूर माँग, कच भक्ति फुलेल सँवार ।
अकपट आँगी भटपट पहनो, त्यागो सब जंजार ॥

हृदय तरङ्ग

संयम नियम बाँधि कटि किंकिणि, जो सब बिधि सुखकार ।
कपट पटन कों खोलि सखी री सत्य घांघरो धार ॥
ओढ़ो सुरँग सील की चादर बाँधि सनेह इजार ।
श्याम-नाम पाजेब बीछिया पहनु, उठै भनकार ॥
गुड़ियाँ जगत-धंध की तजिकै डारि प्रेममय हार ।
सत्यनारायण मिलो पिया हरि दोऊ भुजा पसार ॥



समस्या-पूर्ति

समस्या-पूर्ति

१

सुख कारक, दारक दारिद के,
औ निवारक जा भव फन्दन के
छल-छारक जारक जालन के,
पुनि टारक जो दुख द्वन्दन के ॥
भय हारक कारक काज सबै,
सुप्रसारक प्रेम के बन्धन के ।
रहु रे मन तू पद-पङ्कज में,
वृषभान-सुता नँद-नन्दन के ॥

२

माखन चुरायो दधि लूटि लूटि खायो अब,
द्वे दिन सों कान्ह बाँधे लागे निज टपका ।
आजहुँ न भरयो पेट उनको बताओ ऊधो,
कूबरी कां राखि चाहैं दूसरी कों लपकों ।
मधुपुरी जाय नित मौज हू उड़ावैं आप,
देत सिख गोपिन “करौ री तुम जप कों” ।
जनम सों जानत, दुरथो न कछु सत्यदेव,
नौ सै मूसे खाय के बिलाई बैठी तप कों ॥

६-७-५

बूझत राखि लयो गज कों,
हनि ग्राह, सनेह के साज सँजोये ।
नाम “हरी” के पुकारत ही,
तुम जाय सबै दुख कंटक खांये ॥
दीन-दशा लखि के भरि आवत,
आँसुन सों नित नैनन कांये ।
भारत आरत आपको हाय !
कहाँ इतने करुणानिधि सोये ॥१॥

विश्व शिरोमणि भारत जो,
वह दीन मलीन अरु हीन भयौ ये ।
प्लेग अकाल दुकाल को कष्ट
न जात दयानिधि हाय सह्यो ये ॥
सभ्य समाज चलयो अगुआ बनि
सो ही पिछार निहार रह्यो ये ।
मीचि कें आँखि प्रलै-सुख-नींद
कहाँ करुणानिधि डाटि कै सोये ॥२॥

कोमल जो नव फूल खिले
हिय बेधि बिधे ! दुख-तार पिरोये ।
देश दरिद्र दुखी फिर हू
तुम ताहू पै कौन नसा महिं भोये ॥

समस्या-पूर्ति

विप्र सुदामा कौं हेरि, इतो,
 अपना जन जानि दयानिधि रोये ।
 भारत गारत हेरि, कितैं
 करुणा तजि कै करुणानिधि सोये ॥३॥
 नामहि लेत धुरु प्रह्लादऽरु
 द्रोपदी के दुख धाय कै धोये ।
 वेद पुराण पुकारत, तारत,
 टारत भक्त-त्रितापनि जो ये ॥
 टेरेत आरत गारत भारत
 "माधव माधव" अश्रु बिगोये ।
 नाम धराय लयो करुणानिधि
 भाजि कहाँ करुणानिधि सोये ॥४॥
 लीजिये चीर हृदय यहि को
 लखि लीजिये बीज सनेह के बोये ।
 जाउ बड़े कोउ काऊसी बातन,
 नेह के पंथ अगार रह्यो ये ॥
 प्रेम के फंद फँस्यो तव नाथ
 सिरै सबरे जग संकट होये ।
 भूलिकैं भारत के हिय-सूल
 कहाँ करुणा-वरुणालय सोये ॥५॥
 टेरेत टेरेत हाय ! हरे !
 रस ना रसना मधि आज रह्यो ये ।
 कातर कण्ठ बनै न गुहारत
 कष्ट कठोर न जात कहाँ ये ॥

जा ही सों हे शरणागत-वत्सल
 भारत आसरो आप लयो ये ।
 तानि पितम्बर पाँयन लों
 भरि नींद कहाँ करुणानिधि सोये ॥६॥

काहू की बेर नृसिंह बराह
 ऽरु बामन रूप हँसे मधुरोये ।
 काहू की बेर कों राम हरी
 घनश्याम जू ले अवतार सँजोये ॥
 काहू की बेर उघारेहि पाँयन
 आतुर भाजि, सबै दुख खोये ।
 भारत बेर अबेर करी तुम,
 हाय, कहाँ ! करुणानिधि सोये ॥७॥

रैन दिना कल नाहिं परे
 अजहूँ तुम केशव नींद में भाये ।
 दुःख के जालहिं लेहु समेट,
 जां भारत में चहुँ ओर बिछोये ॥
 जोरि निहोर कहें सतदेव
 दया करि नाथ जू ! टेरे सुनो ये ।
 काहे के हो करुणानिधि जू,
 जब कानन दै अँगुरी तुम सोये ॥८॥

—जून १९०२

समस्या-पूर्ति

४

सह ग्वालन के मिलि के जुलि के,
अति खाय मजूम जो धूम छई ।
लखि आवति कीरतिजा मग में,
शुभ मूँठि गुलाल की हाथ लई ॥
पुनि घाल दई तिनके मुख पै,
सतदेव कसैं कटि प्रेम मई ।
कहि होरी है, होरी है, होरी है जू,
पिचकारी पियारी पे छाँड़ि दई ॥

५

रीति की बात न प्रीति की बात,
प्रतीत की बात न बातन पाई ।
ज्ञान सुहाय न चाय न चित्त में,
ना दुख पाय सहैं कठिनाई ॥
पीय ही पीय पुकारत है हिय,
पारपी सँतापी रह्यो नहि जाई ।
सत्य जू, हा. हरि के बिछुरे,
छतियाँ फटिगीं पै दरार न आई ॥

६

दासी सबै जु हरी-पद-कंज की,
ज्ञान को गान लगै तब फीकौ ।
ऊधो क्यों याहि हमैं समझाय कै,
लेहु मिरै निज लीलि को टीकौ ॥

रैन दिना कल ना मतदेव जू,
 भेजो न श्याम जरावन जी, कौ ।
 धीरज देवौ रह्यो इक आर,
 वियोग में योग करावत नीकौ ॥

७

कोऊ करो बदनाम जू मांहि,
 भयो मन ये घनश्याम को चेरौ ।
 सत्य निहारि हँस्यो जब सों,
 तब सों ही कछू मां पै मंतरु फेरौ ॥
 टाह में लाग्यो रहै निमि वासर,
 पाग्यो सदां तिह जोह घनेरौ ।
 प्रेम को साज सजाय लियो,
 तब लाज सों काज कहा अब मेरौ ॥

८

नित्त फँस्यो मन-मोहन में,
 चाहे कोऊ कछू हिरदे में धरयो करौ ।
 सत्य जू गाँव के सारे हँसो,
 चहुँघाचलि क्यों न चबाउ करयो करौ ॥
 भार में जाउ मरी कुल कानि,
 अरोस परांस के लोग लरयो करौ ।
 प्रेम कौ ताज धरयो सिर पै,
 भलैं लाज निगोड़ी पै गाज परयो करौ ॥

समस्या-पूर्ति

६

कैसे करों, मग चालत में,
 ये निपूता कुनूपुर आंगुरी चांपै ।
 सत्य जू आगें धरों परै पीछे,
 जु हाय परी कहा बीजुरी पां पै ॥
 ब्यारि उड्यो यह अंचल बाबरौ,
 चंचल चौकि दगंचल ढांपै ।
 मे हरी गेह री बीर धसौं किमि
 देहरी चाढ़त देह री कांपै ॥

१०

रानी सबै तुम लोकन की,
 करु वेग कृपा जगदम्ब भवानी ।
 बानी ते कारज सर्व करयो,
 धरयो रूप यहाँ जन के हित आनी ॥
 आनि मेरे त्रैताप हराँ,
 सतदेव सबै सुख सम्पति सानी ॥
 सानी स्वरूप सदां रस की,
 बुधि शुद्ध करौ दुरगे महारानी ॥

११

जायँ कहाँ तोहि दूढ़ें प्रिये,
 अब धीरज हू हम बाँह विसारी ।
 रैन दिना कल नाहि परै,
 सतदेव जू नैनन सों बहै बारी ॥

घोर-धमंड-घने-घन की सुनि,
 सोच यही नित हीय मझारी।
 पुण्य पुरातन प्रेम की प्रेरणा,
 हाय ! कितै गई प्राण पियारी ?

१२

निज स्वार्थ को बस ध्यान जिन्हें,
 परमारथ और न दृष्टि भई।
 निज कोरे महागुन गायो करें,
 चलें बेढँग चाल विरोध-मई॥
 यदि कोऊ कहै हित की न सुनै,
 नहि जानत जागृति-जोति-नई।
 मिल जो नहि सत्य प्रयत्न करें,
 उन लोगनि जाति बिगारि दई॥



पद

पद

१

जगत में को ऐसो गुनवान—

लटि लटि देह भाँकरी सी है, लखी परै पियरान ।
केकी केका कोयल कूक की हूक उठै हियरान ॥
निमिष २ मोहि विष सम लागत कल न परत जियरान ।
सुधि तो छीन लई मति काऊ, बुद्धि लगी सियरान ॥
सतनारायण नन्द नँदन कहँ लाय करै नियरान ।

२

हे घन श्याम कहाँ घनश्याम ।

रज मँडराति चरण-रज कित सों शीश धरै अठ जाम ॥
स्वेत पटल लै घन, कहँ त्यागी सुरभी सुखद ललाम ।
मोरनि-घोर सोर चहुँ सुनियत, मोर मुकट किह ठाम ॥
गरजत पुनि पुनि, कहाँ बतावौ मुरली मृदु सुर-धाम ।
तड़पावत हौ तड़ितहिं छिन छिन, पीताम्बर नहिं नाम ॥
वरसा बारि, नेह चितवनि कित जो दायिनि बिसराम ।
सत्य आज प्रियतमहिं मिलावौ जिय भरि पकरहुँ पाम ॥

३

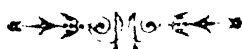
सँवलिया परत न तां बिन चैन ।
नैन लगे जा छिन से तोसों तब सों लगत न नैन ॥
मधुर बैन सुनि तब मनमोहन नैक सुहात न बैन ।
तब प्रभु कुटिल सैन के सन्मुख कर का सक दुख सैन ॥
साथिन भैन हँसति दे तारो पै मोहि तिनकी भै न ।
सतनारायण क्यों तरसावत आइ मिलौ सुख देन ॥

४

आइये सुजन पियारे ।
करथो यथार्थ स्वयंश चरितारथ, जो यहँ सदय पधारे ॥
उच्च-उदार-भाव-मन्दिर यह श्रुति-पंचामृत पीजै ।
भेद-भाव ताजि एक प्राण सों मातृ-वन्दना कीजै ॥
या कारन पूर्वज ऋषियनु की कीर्त्तिलता लहराई ।
सुमन सुमन विकसित चहुँ निकसत सौरभ सब जग छलाई ॥
तिन सुन्दर गौरव रक्षा कों, का यह समुचित नाहीं ।
रहै चिरस्थित यह विद्यालय अनुपम भारत माहीं ॥
यह जीवन संग्राम जानिये, जो प्रयत्न दरसावै ।
करै प्रमाणित बली भली विधि या महि सो जय पावै ॥
या सों तन मन धन हूँ अरपन करि, विशोन्नति कीजै ।
जग दुरलभ नर जीवन को फल सत्य सुखद अब लीजै ॥

करि मन टका राम को ध्यान ।
जगत बीच इक कर्म टका है टका ही राखे मान ॥
टका धर्म सब प्राणि मात्र को जीवन टका बखान ।
टका बिना टकटकी लगाये कलु न परत पहचान ॥
टका मसालो भंग मँगावै राजी हो चित छान ।
टका रहित राजा चकरावै प्रजा करहि दुख गान ॥
रोग शत्रु अरु लुधा विपति कां टका जु मित्र समान ।
टका ते गर्व टका ही ते आदर टका ते निर्भय प्रान ॥
बिना टका सध कोरी खट खट व्यर्थ सु जीवन जान ।
टका हितैषी हित यह पद किय सत्यदेव निर्वान ॥

जगत मे को साँचा श्रीमान ?
मिह धिरी गैया उकरावै, आन रखावै प्रान ।
खैचन चार दुसासन पापी छाँड़ि के सभ्य कलान ॥
शशि कुल गौरव धराधाम पै सदाँ रह्यो विमलान ।
हाय कलङ्कित हूँगो देके दुःख निबल अबलान ॥
पारथ को पुरुषारथ थाक्यो, धरम-सुवन गुण-खान ।
बैठे बैठे धरनि कुरेदहि देखत मनहुँ अप्रान ॥



दोहे

दोहे

१

आवों बेठो हँसौ प्रिय, जासों बढ़े उल्लाह ।
हम पागल प्रेमीनि को, और चाहिये काह ॥
करम धरम निः नेम को, सब विधि देख्यो तार ।
पै अस्मार संसार में, एक प्रेम ही मार ॥
चित चिन्ता तजि, डारिकें भार जगत के नेम ।
रे मन श्यामा श्याम की शरण गहौ करि प्रेम ॥

२

पपीहा पंचपदी

घन गरजत तरजत परम, करि करि कोष अपार ।
करत पयोधर को तवहुँ, चातक चतुर प्रियार ॥ १ ॥
तरसावै, वरु स्वांति जल, बरसावै मुद धाम ।
प्रेमी चातक हृदय को, किन्तु प्रेम सों काम ॥ २ ॥
घन दमड़त घुमड़त घनो, करत घमंड महान ।
प्रेमी पपिया बापुरो, करै कौन पै मान ॥ ३ ॥
डरपावन डारत उपल, धारत चपल प्रकाश ।
प्रेमी पपिया के हृदय, तऊ न टूटति आश ॥ ४ ॥
चाहे कैसे हू परै, विघन और प्रतिबन्ध ।
घन अरु चातक को सदा, अजर अमर सम्बन्ध ॥ ५ ॥

३

श्री राधामाधव विलास

श्री राधापति माधव, श्री सीता पति धीर ।
मत्स आदि अवतार नित, नमौ, हरहु भवपीर ॥ १
रेवति प्रिय मूसल हली, वली श्री बलराम ।
बन्दौ जग व्यापक सकल, कृष्णाग्रज सुखधाम ॥ २
भव-बाधागाधा हरन, राधा राधापीय ।
दुख दारिद्र्य दरि, विस्तरहु, मंगल मेरे हीय ॥ ३
श्री राधा वृषभानुजा, कृष्ण प्रिया हरि शक्ति ।
देहु अचल निज पदन की, परम पावनी भक्ति ॥ ४
मकराकृत कुंडल श्रवन, पीतवसन तन ईश ।
सहित राधिका मां हृदय, बास करौ गोपीश ॥ ५

क्यों पीवहिं मां चरण रस, मुनी पियूष विहाय ।
यह जानन बालक हरी, चूँसत स्वपद अघाय ॥ ६
चन्द्र कमल को जगत में, अनुचित बैर कहात
यासों हरि निजपद कमल, विधुमुख हेत लखात ॥ ७
“करौ जगत पावन सकल”, सोचि जनो मन एह ।
यदपि निपट निर्गुण तदपि, धरत सगुण हरि देह ॥ ८
यदपि समल यमलारजुन, लह्यो मुनी को आप ।
परसि कृष्ण ऊखल बँध्यों, सुरगहिं गये सदाप ॥ ९
“अरे कृष्ण दधि-मथनिया, क्यों डारत कर तात ?”
“चैटी जा जामें गिरीं, तिनहिं निकारन, मात !” ॥ १०

पीत बसन घनश्याम तन, ऐसो शोभित होत !
 मनहुँ सघन घन श्याम में, दामिन दमक उदोत ॥११
 राधे प्रफुलित कंज सम, तव आनन रस ऐन
 ता पराग लोभी भ्रमर, हरि गूँजत दिन रैन ॥१२
 सोहत राधा-चन्द्र-मुख, किरण हँसी मृदु कोर ।
 लागत जनु घनश्याम के, सखि, थिर नयन चकोर ॥१३
 धनि राधे तव मुख कमल, बिकसत परम सुहात ।
 जा मधु के लालच मधुप, हरि इत आवत जात ॥१४

मृगमद टीको दिपत शुभ, नीको राधा भाल ।
 जनु राजत शशिमधि सुभग, निरभय सूरज बाल ॥१५
 लरकत रुचिर बुलाक सों, वदन प्रभा सरसाय ।
 मनहुँ मंजु निरमल लसत, बुध बिधु मंडल जाय ॥१६
 नील बसन मधि लसत अस, राधा मुख अभिराम ।
 मनहुँ धिरयाँ चहुँ शरद शशि, नूतन घन घन श्याम ॥१७
 लसत वदन सुख सदन करि, इत उत करे बार ।
 तम बिदारि मानहु भयो, उदय शशी सुखकार ॥१८
 दसन पांति भागीरथी, भानुसुता भ्रूकोर ।
 अधर सरसुनी सों मिल्यो, तीर्थराज मुख तोर ॥१९
 नासा तर रस धर अधर, आभाधर सरसात ।
 विध्यो कनक के तार में, मनु मानिक दरसात ॥२०
 मनहुँ सुधाकर शशि, करन क्षयी रोग कां नास ।
 कल कपाल मिस देह द्वै, धारि करतु नित बास ॥२१

कंजन, खंजन, मिरग, भख, मदगंजन छबि दैन ।
लसन मैन मद ऐन से, राधे तेरे नैन ॥२२
कारे बार नितम्ब लों, लहरि छटा सरसात ।
शशिमुख अधरामृत पियन, जनु पन्नग गन जात ॥२३
निज करसों बैनी गुहति, गति इत उत कच चीर ।
मनु पंकज बैठी लसति, भ्रमरावलि की भीर ॥२४
कल कपोल सों लट लटकि, युगल कुचन पै भाति ।
सटकारी नागिन मनौ, शशि तजि मेरुहिं जाति ॥२५
कचन बढ़ाय सनेह सों, बाँधति तिन बद्ध तीय ।
कठिन निरदई तनक तव, नाहिं पसीजत हीय ॥२६
गुहे मालती सुमन सों, सोहत कारं बार ।
मनहुँ सघन घनश्याम में, सेत बकन की धार ॥२७

पीत बसन तन, मुरलि कर, कहत मनोहर बात ।
मन्द-मन्द पग धरत सों, कां सखि ! श्यामल गात ॥२८
अरी मुरलिया तैं करयो, कौन कठिन तप बीर ।
जो पीवति हरि-अधर-रस, नासत भव-भय-पीर ॥२९
बृन्दावन चल राधिका, वेग वेग धरि पाय ।
गावत मुरलीधर सुखद, मुरली मधुर बजाय ॥३०
जमुनाकूल कदंब तर, ठाड़ो प्रेम प्रमत्त ।
हरि बजाय मुरली मधुर, हरत गोपिकन चित्त ॥३१
बृत्त बल्लरी कुंज में, बिबिधि बिहंगन संग ।
बिहरत हरि बृन्दा बिपिन, उमगति उरहि उमंग ॥३२

चुंबन करि परपुरुष मुख, मुरलि तऊ नादान ।
 अपने कों बंशज कहति, महा मोद मन मान ॥३३॥
 रे अशोक लखि सुमन क्यों, गर्व करै मन मांहि ।
 कहा तिया की लात कौ, तो कों सुमिरन नाँहि ॥३४॥
 बिलसति यद्यपि चहचही, चहुँ दिसि पादप माल ।
 तदपि सरस कोयल हृदय, भावत एक रसाल ॥३५॥
 “मम मन सम नहिं काहु मन” यही हृदय में धारि ।
 दरसावत दाड़िम मनो, अपनो हीय विदारि ॥३६॥

री कोयल जनि मौन गहु, बोलहु बोल रसाल ।
 न तो जानि हैं तोहि सब, बैठ्यो काग रसाल ॥३७॥
 क्यों करीर बिरवन वसत, कीर छाँड़ि निज धीर ।
 चिरमहु जाय रसाल जहँ, विहरत त्रिविध समीर ॥३८॥
 कुसुमित वेलि नवेलि चहुँ, करत मधुप मृदु गान ।
 मदन सताई मानिनी, छाँड़त अपनो मान ॥३९॥
 नूतन मृदु मधु बल्लरी, ऋतु-पति आगम पाय ।
 लाल नवल दल बसन सजि, मनो बधू दरसाय ॥४०॥
 कोकिल कल कूँजन कलित, मनहु सुधारस सान ।
 बिना पिया परि सखि ! सकल, दुख दै जारत प्रान ॥४१॥
 का सखि ! तहँ फूले न बन, करत न कोकिल कूक ।
 नहिं आवत पिय हेतु का, होत हृदय में हूक ॥४२॥
 तरुण तरणि तापित सरप, छाया सुख कों पाय ।
 सावत केकी पंख तर, निज भय-मरन बिहाय ॥४३॥

हृदय तरङ्ग

तजि निज बैर, मृगेन्द्र मृग, गज कपि शूकर भीर ।
 दावानल की ताप सों, आवत पीवन नीर ॥४४
 जय जग जीवन जीवनहि, देहु तनक बरसाय ।
 कहा होय फिरि चेति कें, जब चातक मर जाय ॥४५
 कूप सरित सागर सलिल, यदपि जगत दरसात ।
 तबहु न चातक की तृषा, बिना जलदजल जात ॥४६
 धन बरसत नाचत शिखी, फुरत लतनि दल सैन ।
 चातक का पातक कियो, तब मुख नीर परै न ॥४७
 धिक नीरद ! चातक तृषा, तां पै पूर न होहि ।
 धिक चातक परलापि जा, पुनि पुनि जाचत तोहि ॥४८

यदपि लह्यो बक ! हंस को, सेत रूप तन माँहि ।
 छीर नीर न्यारो करन, तोऊ समरथ नाहि ॥४९
 सोहत हरि गोपीन संग, रास करत जा काल ।
 मानहुँ मोती माल मधि, नीलम लसत विशाल ॥५०
 मृगमद गरबहु जानि जनि, मोर सुगंध सुहात ।
 तुम किरात के बान सों, मरवायो निज तात ॥५१
 'प्यारौ रवि नीचें गिरत, कबहुँ देखहुँ मैं न' ।
 मन मलीन यों कमलिनी, मींचत स्वकमल नैन ॥५२
 नाथ बिरह सहिहौँ सकल, देहु लुकञ्जन लाय ।
 जासों, तन कों अतन के शर सों सकौँ बचाय ॥५३
 बाहिर भीतर क्रूर सब, करत करम नित क्रूर ।
 कर तऊ दुख देन कों, कहत याहि अक्रूर ॥५४

कहा करौ कहँ जाँउ सखि, कैसे बिलपौ वीर ।
 बिरह अनल सों दग्ध हिय, कहौ काहि निज पीर ॥५५॥
 पद हू में काँटौ लग्यो, करत विकल दे पीर ।
 जा जन कै हिरदय छिद्यौ, ताकौ कल कस वीर ॥५६॥
 सुमरत सुमरत नाथ कों, कठिन शोक को सूल ।
 टूक टूक हीयो करै, अजहू सालत हूल ॥५७॥
 गई रैन आये न पिय, सखि ! मम जीवनप्रान ।
 बिरह आगि सों चहक कें, प्रान करत प्रस्थान ॥५८॥
 कहु रे कागा परम प्रिय, प्रिय आवन की बात ।
 तिन आये हौ देंउगी, तोहि दूध अरु भात ॥५९॥
 माधव तेरे बिरह में, तज्यौ सकल निज वेश ।
 नीर भरे ताके नयन, धूरि धूसरित केश ॥६०॥



रूपान्तर

चर्पट पंजरी

प्रतिविम्ब

भज गोविंदहि भज गोविंदहि,
गोविंदहि भजि मूढ़ अरे ।
लहि समीपवरती निज मरना,
करै न रक्षा 'डुकृष्' करना ॥ भज० ॥

भावार्थ

रे मूरख भजि राम कों, राम भजे गति होइ ।
मौत आइ घेरै जभी, कौन बचावै तोइ ॥ १ ॥

बाल अवस्था में क्रीडागत,
है कै तरुण भयो तरुणी रत ।
वृद्धपने में चिन्तार्थीना,
पारब्रह्म सों कबहुँ न लीना ॥ भज० ॥
लरिकाई गई खेल में, ज्वानी जोरु संग ।
बूढ़ भयो सोचत रह्यो, रँग्यो न हरि के रंग ॥ २ ॥

पीन पयोधर जघन स्थाना,
लखि तिय माया मोह फँसाना ।
यह सब माँसवसादि विकारा,
मनहि विचारहु बारहिं बारा ॥ भज० ॥

चपट पंजरी

उभरी छाती देखिकें, परसत जाँघ सुडौल ।
मोह जाल ऐसो फँस्यो, करत नारिसों चौल ॥
चरबी माँस बढ़ोतरी, दीसति अच्छी नारि ।
बेर बेर तू सोच कें, मन में नेंक विचार ॥ ३ ॥

सिथिल अङ्ग सिर सेत घनेरो,
दशन बिहीन भयो मुख तेरो ।
है अति वृद्ध फिरत गहि डंडहि,
तदपि न छाँड़त आशा पिंडहि ॥भज०॥

सूखि आँग मूड़ी हलत, मुंह में एक न दाँत ।
बूढ़ भयो लाठी गही, तऊ न आशा जात ॥ ४ ॥

जबलों धन-संचय बल देही,
तब लौं है परिवार सनेही ।
भयो जबै पुनि जरजर गाता,
कोउ न पूछत घर में बाता ॥भज०॥

हाथ पाई जौलों चलें, जौलों टका कमाइ ।
तौलों आदर होत है, जब घर भीतर जाइ ॥
हाथ पाई जब थकि गये, कौड़ी नहीं कमाइ ।
बात न कोऊ पूछई, जब घर भीतर जाइ ॥ ५ ॥

निशिदिन सन्ध्या प्रात जु धावैं,
 शिशिर बसन्तहु पुनि पुनि आवैं ।
 नाचत काल जु बीतत आयू,
 तदपि न छांड़ति आशा-वायू ॥भज०॥

राति दिना बीतत रहैं, अब संभा तब भोर ।
 जाड़े गरमी होत हैं, काल बड़ो है चोर ॥
 खेलत कूदत लेत हैं, सिगरी उमरि चुराइ ।
 तबहू तो मन ते नहीं, चाह नैंक हू जाइ ॥ ६ ॥

वैस गये, का काम बिकारा ?
 जल सूखे सर की का सारा ।
 छीन भये धन का परिवारा ?
 समझ तत्त्वहि का संसारा ? ॥भज०॥

उमरि स्वसें रसियापनो, जल सूखे का ताल ।
 छांड़ै कुटुम गरीब कों, ज्ञानी जग जंजाल ॥ ७ ॥

रग्वहि मुड़ाहि उपारहि केशा,
 भगवां पट करि धरि बहु भेषा ।
 लखतहु पै न लखत संसारा,
 करत उदर हित शोक अपारा ॥भज०॥

कोऊ जटा रखाइ कै, कोऊ मूँड़ मुड़ाइ ।
 कोऊ बार उखारि कें, भगवां भेख बनाइ ॥

चर्पट पंजरी

सूझत हू अंधो बन जग नहि देखै आपे ।
पेट काज रोवतु फिरै, बांह लगाए छाप ॥ ८ ॥

मग चिथरन सों निरमित कंथहि,
धरमाधरम न जानत पंथहि ।
न मै, न तू, अरु ना यह लोका,
तौ किहि काज समेटत शोका ॥भज०॥

घूरे लत्ता बीनि कें, सिंयत कांथरी जोइ ।
पाप पुन्र माने नहीं, जो चाहे सो होइ ॥
मैं अरु तू कांउ अमर नहि, अमर न दुनिया होइ ।
तोऊ मरती बेर क्यों, देखि देत तू रोइ ॥ ९ ॥

आगें अग्नि पिछारी भानू,
निशि में करत चिबुक तर जानू ।
कर भिक्षा, तर नीचै बासा,
तदपि न छांडत आशा-पाशा ॥भज०॥

आगे धरिके आगि कों, सूरज कों दै पीठ ।
घोंटुन पै ठोड़ी धरै, राति कटति है नीठ ॥
हाथ पसारे भीख कों, करै पेड़ तर बास ।
या गति कों पहुँचै तऊ, नेक न छांडत आस ॥१०॥

हृदय तरङ्ग

को मैं ? कहाँ से ? कहाँ का आता ?

कां मम मातु ? कौन मम ताता ?

लग्गि जिय सकल असार-पसारा ।

तजिकै यह सब स्वप्न विचारा ॥भज०॥

कां मैं, अरु आयो कहाँ, कितते गयां जु आई ।

बाबा मेरो कौन है, कां है मेरी माइ ॥

ये दुनिया जो दीखती, फीकी सब तू जान ।

या सबकुँ तू छोड़िदे, सपने की सी मान ॥११॥

कां तब पतनी ? कां तब पुत्रा ?

यह संसार अतीव विचित्रा ॥

को का को ? तू को ? कित आई ?

चिन्तन करहु तत्त्व कां भाई ॥भज०॥

जोरू तेरी कौन है, बेग तेरो कौन ।

अचरज की दुनिया बनी, जाकूँ जाने कौन ॥

को तू, है तू कौन कां, कहाँ गयां तू आई ।

निहचै बात विचारियो मन में मेरे भाइ ॥१२॥

फिर फिर मरना फिर फिर होना,

फिर फिर मात उदर में साना ।

यह जग अगम गहन भयकारी,

कृपया तारौ मोहि मुरारी ॥भज०॥

चर्पट पंजरी

फिर फिर जीवै फिर मरै, फिर मैया के पेट ।
ये जग खोटो राम मोहि, लै बचाइ दुख मेट ॥१३॥

गावहु गीता सहस्र नामा,
ध्याउ सदां हरि-रूप ललामा ।
सेवहु नित सतसंग सुहाता,
करहु दान दीनहि वित ताता ॥भज०॥

गीता गावहु प्रेम सों, हरिके नाम हजार ।
संगत कीजै साधु की, सब छूटै जंजार ॥
जितनां बनि तो पै परै, तितनो कीजो दान ।
भूखौ आवै द्वार पै, कीजां कछु सनमान ॥१४॥

दिलीप कथा

बानी अर्थ समान युक्त जा. जगके मा पितु जानी ।
 वाक्य अर्थ के बोध हेत. नित वन्दौ शम्भु भवानी ॥ १
 कहां तुच्छ मति मोर. कहाँ दुस्तर रवि वंश अपारा ।
 तरन चहौ. लै डौगी, भ्रमवस. पारावारहिं पारा ॥ २
 अति मतिमन्द सुकवि-जस चाहौ. हांगी लोक हँसाई ।
 वौना की सी. उच्च फलहिं जा उचकत बांह उठाई ॥ ३
 किन्तु प्रथम ही जासु वंश को ग्वाल्यो कविजन द्वारा ।
 बज्र-विधी-मनि-सूत भांति मां जासों हांय गुजारा ॥ ४
 चेरी जिन की सिद्धि, जनम सों जा अति पावन भारी ।
 सिन्धु छोर लों भूप, चलत रथ जिनके स्वर्ग मँझारी ॥ ५
 यथा विधी रचि यज्ञ किये, जिन याची सदां अयाची ।
 जस अपराध दण्ड तस दीन्हो, चौकस अवसर जांची ॥ ६
 दान दैन धन जोरि, सदा जा सत्य हेत मित भाखी ।
 जय सञ्चयी सुयस हित, जिनतिय वंश चलावन राखी ॥ ७
 बालापन पढ़ि ब्रह्मचर्य्य सों, रमा रमणि तरुणाई ।
 बृद्ध समय मुनि भांति योग करि, तजी देह हरि ध्याई ॥ ८
 सकत न यदापि बखान, तऊ रघुकुल को कहन विचारयो ।
 सुनि कानन तिन-कथा चुलबुले चञ्चल चितको मारयो ॥ ९
 परखहिं वही सजन जाकों, जो सांच असांच प्रमानै ।
 जैसे आंच तपाय, कनक की सेत स्यामता मानै ॥ १०
 चतुर सिरामनि माननीय नृप वैवस्वत मनु नामा ।
 छन्दन में जिमि 'प्रणव' प्रथम, तिमि भयो भूप-अभिरामा ॥ ११

दिलीप कथा

परम पवित्र तास कुल सुन्दर. अति पवित्र नृप-चन्द्र ।
उपज्यो नृप दिलीप नय नागर, जिमि छीरोदधि-इन्द्र ॥ १२
वृषभ कन्ध, बल त्रिपुल, हृदय भुज दीर्घ शील अनुहारा ।
जिमि स्वधर्म पालन हित तत्पर छात्र-धर्म-अवतारा ॥ १३
तेज और निज प्रबलपने सों करि सब को मद चूरी ।
बढ़ि, सुमेर सों, बसुन्धरा जिन करी स्ववस भरपूरी ॥ १४
देह समान बुद्धि बल जाको, बुधि समान श्रुति-ज्ञाना ।
ज्ञान सरिस जा करम, करम सम जासु सिद्धि, जग जाना ॥ १५
डरत चहत ता कहँ आश्रित जन, लखि नृप नृप-गुन भारी ।
जिमि नर भिभक्त जात सिन्धु-दिसि ग्राह, सुरत्न सँवारी ॥ १६
धरि रथ-चाक-स्वभाव, चतुर नृप लहि, मनु मारग वारी ।
नियम-लीक नहिं डिगी, लीकभर, ताकी प्रजा पियारी ॥ १७
सहस गुनौ रस देन, भानु कर खँचत, जिमि रस-सारी ।
वा ने, तिमि, कर लयो. प्रजा सों, करिवे अधिक सुखारी ॥ १८
द्वैसो कारज सरै, सैन मरजादा रखिवे चाकी ।
शास्त्रन में दृढ़ बुद्धि, चाप पै चढ़ी प्रतिचा जाकी ॥ १९
खुलत न कछु, ता मुग्य बिकार लखि, राखत गुप्त विचारा ।
पूरव-संस्कार सम. जासु फलहि सब करम अपारा ॥ २०
निर्भय तऊ करत निज रक्षा अरज्यो धरम अकामा ।
लयाँ लोभ बिन धन अशक्त ह्वै, भोगे भोग ललामा ॥ २१
जानत तऊ चुप. छम्यो बीर बनि, देत डींग नहिं मारी ।
ता गुन अगुन संग रहि, सोहत मनहुँ सहोदर भारी ॥ २२
वेदन को लहि पार. बिषय में कबहु न मनहिं लगायो ।
बिना वृद्ध वय धरम निरत रत, भूपति बड़ो कहायो ॥ २३

शिक्षा-रक्षण-भरण आदि सों प्रजा-पिता तिहि जानौ ।
 केवल जनम प्रदाता तिनके निज-निज पितु को मानौ ॥ २४
 प्रजा-शान्ति हित डांड्यो दोषिन, सुत हित कियो बिवाहा ।
 अरथ काम हू चतुर भूप के मानहुँ धरम उछाहा ॥ २५
 भूप रसा पै यज्ञ करत, बासव बरसावत वारी ।
 अपु में पलटि सम्पदा निज निज करी भुवन रखवारी ॥ २६
 पचि हारे नृप अपर, सके नहिं, प्रजापाल जस चोरी ।
 'चोरी' लियो चुराय नाम निज, परधन सों मुख मोरी ॥ २७
 रोगी औषधि सम तिहिं प्यारो, शत्रु सजन जो कोई ।
 उरग-डसी अँगुरी सम नृप प्रिय तज्यो जो दुरजन होई ॥ २८
 बिधि ने सज्यो ताहि वाही सों, जासों तत्व बनाये ।
 तासों तिन सम, सब गुन जाके, परहित हेत सुहाये ॥ २९
 उदधि तीर प्राचीर जासु दृढ़, सागर सुन्दर खाई ।
 करघौ पुरी को सौ छिति-शासन, इक छत नृप हुलसाई ॥ ३०
 मगध-देस-नृप-सुता चतुर जो सब जग बीच कहाई ।
 यज्ञ-दक्षिणा सम सुदक्षिणा ताकी रानि सुहाई ॥ ३१
 बहु रानिन के अछत, भूप अपुकौ तियवन्त विचारी ।
 लहि सुलक्षिणा राजलक्ष्मी, सुदक्षिणा सी नारी ॥ ३२
 निज अनुरूप प्रिया अपनी कै आत्मजन्म ललचानौ ।
 मिल्यो न किन्तु मनोरथ वाको, योंही समय बितानौ ॥ ३३
 सुतहित जतन करन, निज भुज सों जग-भरु भार उतारयो ।
 सब बिधि उचित बिचारि ताहि पुनि सचिवन ऊपर डारयो ॥ ३४
 पुत्र-कामना सों मनाय बिधि, दोऊ अति रुचि मानी ।
 गुरु बशिष्ठ-आश्रम अति पावन, चले नृपति अरु रानी ॥ ३५

सजि बैठे मिलि रथ, जाकी धुनि मधुर मञ्जु मतवारी ।
 मनु बरषा घन पै ऐरावत ऐरावती सवारी ॥ ३६
 शाल-गोंद गसि गन्धि गुही, तन परसि परम सुखकारी ।
 बन कँपाय, पूरित पराग, तिन सेवत चलै बियारी ॥ ३७
 सुनि रथ-धुनि घन भ्रम वश कोहकत कलकलापि किलकारी ।
 सुनत चले, मृदु पड़ज तुल्य तिन केका द्विविधि नियारी ॥ ३८
 कछु पथसों हटि मिरग मिथुन, रथ इकटक दीठि निहारै ।
 तिन दृग सों निज दृग मिलाइ हँसि दोऊ करत विहारै ॥ ३९
 कहुं सारस की श्रेणि अधर मिलि बन्दनवार वनावै ।
 सुनि तिन सरस गान, दोऊ कछु आनन नभहिं उठावै ॥ ४०
 हौन पवन अनुकूल मनोरथ-सिद्धि प्रगट दरसावै ।
 हय खुर रज उड़ि, रानि अलक, नृप मुकट छुअन नहिं पावै ॥ ४१
 सरवर-लहरि लहकि, मिलि पंकज-परिमल-सीत समानी ।
 निज उसास सम सङ्घत ताकों, चले नृपत अरु रानी ॥ ४२
 होत चले तिन गामन हैकैं जो मख हेत लगाये ।
 होतन के अमोघ आशिष, अरु अरघ-दान तहँ पाये ॥ ४३
 नव-नवनीत भेट कहुं लाये बृद्ध गोप मनभाये ।
 पूछत नृप तिनसों बन-मारग-तट-तरु नाम सुहाये ॥ ४४
 विमल वेस सों चलत अहा ! तिन शोभा कहत न आवै ।
 मनहुँ चैत में चपल चारु मिलि चित्रा चन्द्र सुहावै ॥ ४५
 लग्यो दिखावन सकल, प्रिया कों, जो मग में मनमानी ।
 जाति रही, तउ गैल चतुर-चूरामनि जात न जानी ॥ ४६
 थके जास मग चलत अस्व, नृप अद्वितीय जस वारो ।
 पहुँच्यो रानी सहित सांभ को, जहँ मुनि आश्रम प्यारो ॥ ४७

जहां समिध बन-फल कुस लैकें मुनि गन बनसों आवैं ।
 तिनकों स्वागत लैन अलख अति अनल देव नित जावैं ॥ ४८
 जहां कुटी पै मिरग धान-तृन नित के चाखन हारे ।
 ठाड़े द्वार रोकि मानो सुत ऋषि-पतिनिन के प्यारे ॥ ४९
 सींचत सभय जहां मुनि कन्या पौधनि घमलन माहीं ।
 जलभरि, प्यासे बिहँग तिनहिं बिसवास दैन दुरि जाहीं ॥ ५०
 राखे घाम सुखाय, धान के जहँ पै ढेर लगाई ।
 करत जुगार अजिर में बैठे निरभय तहँ मृग आई ॥ ५१
 आहुति गन्धि-गुह्यो जहँ सूचक होम-अनल को जाई ।
 पवन-पुह्यो चहुं धूम, करै अतिथिन को पावन सोई ॥ ५२
 “रथ-घोड़नि को खोल देहु” यह कहि सारथि समझायो ।
 रथसौं प्रिया उतारि, आपहू उतरि भूप पुनि आयो ॥ ५३
 पूजनीय नय-करम-धरम-रत जो दीनन रखवारो ।
 सभ्य मुनिन रानी सह ताको कीन्हो स्वागत भारो ॥ ५४
 सन्ध्या-विधि बीतत, नृप देखे मुनि अरुन्धती सङ्गा ।
 मनहुँ विराजत अग्निदेव मिलि स्वाहा सहित उमङ्गा ॥ ५५
 राजा सहित मागधी रानी तिन पद वन्दन कीयो ।
 तिनकों गुरु गुरु-पतिनि प्रेम करि अति अशीष शुभ दीयो ॥ ५६
 ताकी सुन्दर अतिथि क्रिया करि रथ की थकनि मिटाई ।
 तब पूछी ऋषि राज-ऋषी सों राजकुशल हरखाई ॥ ५७
 अवसि चाहिये कुशल, सकल थल, तबलों संग हमारे ।
 विविध विपत सों जाकी रक्षा जबलों हाथ तिहारे ॥ ५८

मन्त्र आपुके रिपु अलक्ष्य कों नष्ट करत जब आई ।
दृष्ट-लक्ष्य भेदी मम पैने शर लौटत खिसियाई ॥ ५६
सबिधि आहुती परी अनल में तब द्वारा मुनिराई ।
बरपाभरन कृषी जो सूखत सूखा में मुरझाई ॥ ६०
पूरी आयु पाइ मम परजा निडर निरापति मानौ ।
ताको हेतु प्रभो ! सब केवल ब्रह्मतेज निज जानौ ॥ ६१
यहि प्रकार सुधि लेत गुरो ! जब ब्रह्म-तनय तुम जाकी ।
काटि आपदा, बड़े न कैसे, नाथ सम्पदा ताकी ॥ ६२
मम अनुरूप तनय, रानी के कोउ न स्वामि लखावै ।
धरा सदीपा रतन प्रसूता यासों मोहि न भावै ॥ ६३
मां पाछें यह समझि, श्राद्ध में 'पिण्ड दान किमि पावै' ।
खात न पितर अघाय, समेटत स्वधा सदाँ दरसावै ॥ ६४
"पय दुरलभ मम गये" पितर अस करि विचारि निज जी में ।
सीरे भरत उसास, अश्रु मिलि तातो जल नित पीमें ॥ ६५
भयो देवऋण-मुक्त यज्ञ करि, परि हा ! बिन सन्ताना ।
जानहु उज्ज्वल अरु उदास मोहि लोकालोक समाना ॥ ६६
जप तप दानज पुण्य होत परलोकहि सदां सहाई ।
शुद्ध बंश सन्तान लोक परलोकहि नित सुखदाई ॥ ६७
परम प्रेम कर निज कर सींच्यो बिन फल तस अनुहारी ।
सुतबिहीन लखि मोहि, विधाता क्यों नहिं होत दुखारी ॥ ६८
भगवन् ! सहो जात नहिं मोपे यह अन्तिम ऋण भारी ।
गज सम, जो बिन न्हान, अलानहिं बाँधिकें, होत दुखारी ॥ ६९
आसों छूटौ नाथ ! कृपा करि सोई तुरत बतावौ ।
रवि-कुल-रक्षक सदां, विपति सों अब के मोहि बचावौ ॥ ७०

यह सब नृप सों जान, ध्यान धरि, नैन मूँदि मुनिराई ।
 सर सम सोवत मीन जहाँ, छिन एक समाधि लगाई ॥ ७१
 तबै योग बल सों, नृपसंतति-बाधा कारण पायो ।
 पूरण योगी मुनि वशिष्ठ ने ऐसो ताहि जनायो ॥ ७२
 “एक समय मिलि देवराज सों, जबै धरा दिसि आयो ।
 बैठी छांह कलपतरु, मग मै सुरभी कों तू पायो ॥ ७३
 धरम-लोप-भय सों सुमिरन करि ऋतु न्हाई निज नारी ।
 भलो कियो नहिं भूप ! भूलि तब ता प्रदक्षिणा न्यारी ॥ ७४
 श्रापो वा ने तोहि, कहत “तू करै अनादर मेरो ।
 पूजे बिन मो सुता चलै अब बंस कदापि न तेरो ॥” ७५
 मतवारे दिग्गज चिंधारे सुरसरि श्रोत मँझारी ।
 जासों तैने औ सारथि ने सुन्यो सराप न भारी ॥ ७६
 ‘तासु अनादर करन’ सिद्धि में यही विघन इक भारो ।
 पूजनीय पूजा को त्यागन रोकत काज हमारो ॥ ७७
 हवि हित गई बरुण यज्ञहि सो, जो होगो चिरकाला ।
 उरग घिरयो जहँ द्वार, कठिन अति अब प्रवसन पाताला ॥ ७८
 ता सुरभी की सुता प्रतिनिधी पावन तासु बनाई ।
 पूजहु पतिनी सहित देहि फल अवसि मोद मन पाई ॥ ७९
 कथन करत ही यहि प्रकार, मुनि-आहुति-साधन हारी ।
 निरमल गऊ नन्दिनी आई वन सों बगदि पियारी ॥ ८०
 धरें भाल सित रोम लहरिया मृदुल पटल तन वारी ।
 राजत रूप राशि जिमि सन्ध्या नव चन्द्रोदय धारी ॥ ८१
 अति पावन जो यज्ञ न्हान सों ताजी पय सरसावै ।
 ऐन भरी, निरखत निज बछरा, ताहि रसा बरसावै ॥ ८२

ता खुर सों खुदि खुदि उठि रज कन परस्यो नृप तन जाई ।
 ढिंग सों देत कढ़ी मनु ता कों तीरथ फल अधिकारि ॥ ८३
 लखि ता पावन रूप शुभाशुभ सगुनहि जानन हारे ।
 जानि मनोरथ सफल तासु, मुनि नृप सों वचन उचारे ॥ ८४
 राजन ! जानहु शीघ्र काज सब पुरिहैं अबसि तिहारे ।
 क्योंकि, कृपा करि यह कल्याणी आई नाम पुकारे ॥ ८५
 कन्द मूल फल खाय, अनुसरहु जा गो कों मनधारी ।
 करहु प्रसन्न याहि तुम मानौ विद्या पढ़त विचारी ॥ ८६
 चलहु, चलत जाको लखिकें, तुम ठहरहु ठहरत जाके ।
 बैठहु, बैठत निरखि याहि, जल पीवहु, पीवत याके ॥ ८७
 भक्तिमती तव सती, पूजि यहि, जासु संग निज जावै ।
 करि आवै बन निकट याहि पुनि साँझि समय लै आवै ॥ ८८
 करै न जोंलों दया निरन्तर सेवहु जाहि सम्हारी ।
 निज पितु सम मन मुदित पुत्रवारन के रहहु अगारी ॥ ८९
 रानी सहित प्रेम सों राजा जो सब विधि परवीनौ ।
 देस काल को ज्ञान जाहि, धरि गुरु आयसु सिर लीनौ ॥ ९०
 बिधि सुत शिष्ट वशिष्ठ चतुर नृप-भाग बड़ाई कीनी ।
 कछुक राति बीतत, सोवन की ताहि रजायसु दीनी ॥ ९१
 धारि तपोबल मंत्र कुशल मुनि तउ नृप व्रतहि विचारी ।
 किय प्रबन्ध वन असन बसन निवसन को ता अनुसारी ॥ ९२
 सवैया

लचि लौनी लता लहराइ रहीं, जहँ पर्नकुटी कुलदेव बताई ।
 निज प्यारी समेत बड़े सुख सों तहँ आयसु पाय रह्यो नृप जाई

दिलीप कथा

उठि ब्रह्म मुहूरत में बटु-वृन्दन, वेदन की ध्वनि मंजुल गाई ।
जियजानि प्रभात, कुसासन सों नरपाल जगे, अतिही हरसाई ॥ ६३

सन् १६०५ ई०

द्वितीय सर्ग ।

पूजी तबै धेनु महीप बाला ।
चढ़ाईकै अक्षत गन्ध माला ।
चुखाइ बच्छा नृप बाँधि लीन्हों ।
गो कों यशस्वी बन छांड़ि दीन्हों ॥ १

पतिव्रता नारिन अग्रनीया ।
सुदक्षिणा सुन्दर माननीया ।
गो-खोज लागी शुचि मार्ग चाली ।
चले स्मृती ज्यों श्रुति-अर्थपाली ॥ २

दयाध्वजा कीरति-पुञ्ज दानी ।
बिदा करी भूपति आप रानी ।
राखी गऊ रूप धरा बिचारी ।
नदीश चारयो थन जासु भारी ॥ ३

धरापती, सेवक शेष टारी ।
चल्यो ब्रतै हेतु गऊ पिछारी ।
न अन्य सो तासु शरीर रक्षा ।
स्ववीर्य राखी मनु-वंस-कक्षा ॥ ४

खुजाइ, दैकैं तृण-कौर प्यारे ।
 बिड़ारि ता मच्छर डांस भारे ।
 बे रोक स्वच्छन्द जु ढील दीनी ।
 भूपाल ह्वै तत्पर सेव कीनी ॥ ५
 ठैरे गऊ ठैरत, तास चाले—
 चलै, जहाँ बैठति बैठि, पालै—
 स्वनेम, प्यासी जब नीर देवै ।
 छायेव ताकों नरपाल सेवै ॥ ६
 बे राजचिन्हैं सुप्रताप वारो ।
 स्वतेज सों दीपत जा उजारो ।
 मनौ मदोन्मत्त गजेन्द्र भारी ।
 चुचाति ना जा मद-वारि-धारी ॥ ७
 लतानि सों केस बंधे सुहाये ।
 फिरै बनी, सो धनु को चढ़ाये ।
 रखाइवे के मिस नन्दिनी के ।
 सुधारिबे दुष्ट पशू बनी के ॥ ८
 चल्यो बिना सेवक तोउ राजा ।
 लग्यो प्रचेता सम तेज काजा ।
 बिहंग बैठे तरु गान गामै ।
 विजै-ध्वनी जास मनौ मचामै ॥ ९
 बेली नबेली भरि ब्यारि प्यारी ।
 सप्रीति राजै ढिंग में निहारी ।
 प्रसून-वर्षा तिहि पै जुटावैं ।
 खीलैं मनौ पौर सुता लुटावैं ॥ १०

भ्रमै बनी में धनुबान धारी ।
 दयाल तोऊ नृप कों विचारी ।
 निशंक ताको मृग-दर्श कीन्हों ।
 बड़ी बड़ी आँखिन लाहु लीन्हों ॥ ११
 जो बाँस के रन्ध्र भरै बियारी ।
 बजाइ सोई मनु बेणु धारी ।
 उच्चै स्वरेण यश ता सुनामै ।
 निकुञ्ज बैठी बनदेवि गामै ॥ १२
 मन्दी गुही सीतल-गन्धि प्यारी ।
 भर्ना-भरे-सीकरयुक्त व्यारी ।
 सेवै लगी भूप जबै सिधारयो ।
 छाते बिना लूअन घाम मारयो ॥ १३
 रखाइबे ज्यों बन भूप आयो ।
 सजोर निर्जोरहिं ना सतायो ।
 बुझी बिना वृष्टि सबै दवागी ।
 विशेष वृद्धी फल पुष्प जागी ॥ १४
 दसौ दिसा को करि के पवित्र ।
 विश्राम को साँझ समै विचित्र ।
 चली नये पल्लव रंग वारी ।
 सूर्य्य प्रभा ज्यों मुनि-धेनु प्यारी ॥ १५
 सम्पादिनी जो सब धर्म काजा ।
 पाछे चल्यो तासु दिलीप राजा ।
 सोहे तबै पावन दोउ प्रानी ।
 श्रद्धा स्वयं ज्यों सत्कार्य सानी ॥ १६

❀ कढ़ें कहुँ शूकर कुण्ड न्हाते ।
 स्वघोंसला वृक्षहि मोर जाते ।
 मृगा रमे शाब्दल सों विशेषी ।
 बनी बनी श्यामल भूप देखी ॥ १७
 प्रयत्न सों जो थन पीन भारी ।
 लै स्थूल भूपाल चलै अगारी ॥
 मन्दी चलै चाल सम्हारि सोऊ ।
 करै बनी सोभित पन्थ दोऊ ॥ १८
 लौटयो जवै धेनु पिछार आई ।
 सुदक्षिणा भूप लिवान धाई ।
 हरी निमेषी लखि प्रेम प्यासी ।
 अतृप्त इच्छा अति ही प्रकासी ॥ १९
 चलयो मगै भूप गरु पिछारी ।
 सुदक्षिणा सुन्दरता अगारी ।
 दोऊनि में सो अस धेनु राजै ।
 ज्यों साँझ, रात्री दिन बीच भ्राजै ॥ २०
 परिक्रमा तास नवाइ माथै ।
 रानी करी साक्षत पात्र हाथै ।
 विशाल जो सींगन ठौर जाकौ ।
 पूज्यो मनो द्वार स्वकामना कौ ॥ २१

* लरि लोरि तड़ागन में लिथरे तन सूकर के गन भाजत भारी ।
 जहँ रैन बसेरो करै तरु ओरन मोर चलै मुख मोर निहारी ।
 मृगा लोल कलोल करै बिहरै चरै घास हरी थल काहु मझारी ।
 इनसों अति चोयल चित्त चुभीलो चलयो बन हेरत भूप अगारी ॥ १७

दिलीप कथा

बच्छाभिलाषी चुपचाप ठाड़ी ।
पूजा लई दोउन प्रीति बाढ़ी ।
स्वभक्ति में देखत तासु प्रीति ।
“करै कृपा शीघ्र” भई प्रतीति ॥ २२
बन्दे सपत्नी गुरु पाद राजा ।
निश्चू भयो सो करि सान्ध्य काजा ।
दै दूध बैठी गउ ज्यों निहारी ।
त्योंही करी सेवन की तयारी ॥ २३
निवेदि पूजा. धरि दीन्ह दीयो ।
सखीक राजा यह काज कीयो ।
सोये पिछारी जब गाय सोई ।
उठे गरु संग प्रभात होई ॥ २४
ऐसे ब्रतै धारि सुपुत्र काजै ।
राजा सपत्नी यश रूप राजै ।
सदां दुखी दीन महा बचाये ।
इक्कीस ता ने दिन यों बिताये ॥ २५
बाईसवें कों निज दास हीयो ।
गरु तबै जांचन चित्त कीयो ।
गंगा-मुखी-घास घनी मँभारी ।
घुसी गुफा पर्वत राज भारी ॥ २६
न व्याघ्र जामें सक जाहि मारी ।
गिरी छटा सोचि लखै पियारी ।
बलात् ताकों गहि सिंह लीन्हौ ।
अदृष्ट में सो नृप नाहिं चीन्हौ ॥ २७

कीन्हौ गरु आरतनाद तासों ।
 प्रतिध्वनी गूँज उठी गुफा सों ।
 ता ने लगी दृष्टि नृपाल खेंची ।
 जैसे हटै अश्व लगाम ऐंची ॥ २८
 गयो लख्यो वहां धनुबाण धारी ।
 चढ़यो गरु पाटल सिंह भारी ।
 ऊँची शिखा पर्वत धातु भ्राजे ।
 तापै मनौ पादप लोध राजै ॥ २९
 स्वशर्णपाली तब सिंहगामी ।
 शत्रु बिहीन औ मनु-दीप नामी ॥
 निषंग तीरै, हिय लाज आनी ।
 लयो चह्यौ मारन सिंह भानी ॥ ३०
 जो हाथ सूधो सर लैन धारो ।
 जम्यो तहाँ, ना उखरै उखारयो ।
 नख प्रभा भूपित पंख सोहै ।
 मनौ चित्यो चित्तर चित्त मोहै ॥ ३१
 जबै सक्यो ना हनि शत्रु ठाड़ौ ।
 ठैरी भुजाए लखि क्रोध बाढ़ौ ।
 जरयो मनौ भीतर भूप भारो ।
 मंत्रौषधी सों विषहीन कारो ॥ ३२
 आर्याभिमानी मनुवंश लाज ।
 सोचो सबै अन्तर राज राज ।
 मनुष्य ज्यों बोलत देखि ताकों ।
 भयो अचम्भो अति और जाको ॥ ३३

अजी महाराज रहो वृथा ये ।
 जा शस्त्र सों होत कहा चढ़ाये ।
 जो शक्ति तोरै तरु मूल जाई ।
 सकै नहीं पर्वत को हिलाई ॥ ३४
 जबै सवारी वृष की विचारैं ।
 मो पीठ पै पाद पवित्र धारैं ।
 ता शम्भु को किंकर मोहि जानौ ।
 कुम्भोदर मित्र-निकुम्भ मानौ ॥ ३५
 ढिंग जो तिहार यह देवदारु ।
 गौरीश पाल्यो सुत ज्यों विचारु ।
 जो हेम कुम्भस्तन सों निकास्यो ।
 गणेश-मा को पय खूब चाख्यौ ॥ ३६
 घिस्यो करी-वन्य कपोल जासौ ।
 कर्दा कछू कोमल छाल तासों ।
 तबै भवानी लखि सोच पागी ।
 मनौ सुते तीखन चोट लागी ॥ ३७
 तबैहि सों जा गज वन्य आमें ।
 डरायबे काज तिन्हें गुफा में ।
 महेश आदेश यहाँ सम्हारौ ।
 मिले वही ता महुँ तोष धारौ ॥ ३८
 गिरीश ये गौ बस ठीक दीन्ही ।
 भूखो बड़ो, मो सुधि, भेजि लीन्ही ।
 करौ ब्रतै पारण आज जासौ ।
 जैसे करै राहु शशी-सुधासौ ॥ ३९

बिहाय लज्जा घर जाउ धाई ।
 तैने गुरु भक्ति भली निभाई ।
 न शस्त्र जो वस्तु सकै रखाई ।
 यासों न योद्धा-यश छीनताई ॥ ४०
 सुनी जबै गर्वित सिंह बानी ।
 नरेश त्योंही सब बात जानी ।
 शम्भू करयो निष्फल बान भारी ।
 तजी अवज्ञा निज माँहि सारी ॥ ४१
 बिना गहे हू शर, भंग यत्र ।
 भयो, दयो ज्वाब नृपाल रत्र ।
 जैसे बृषा मारन बज्र लीनौ ।
 त्रिनैन दृष्टि कर थांवि दीनौ ॥ ४२
 बेकाम चेष्टा सब भाँति जा तैं ।
 मृगेन्द्र हास्यास्पद मोर बातैं ।
 चाहों कछू, पै अब हों बखानौ ।
 क्यों ? आप प्रानी पढ़ि जीय जानौ ॥ ४३
 हैं पूज्य मेरे हर, देव केतु ।
 सृष्टि स्थिती पालन नास हेतु ।
 किन्तु गुरुहू धन-नास स्वामी ।
 न योग्य है देखन आँखि सामी ॥ ४४
 सो आज लै मो यह देह सारी ।
 निबाहिये जीवन वृत्ति प्यारी ।
 है सांभ जाकं सुत प्रेम जागौ ।
 ऋषी गऊ कौं अब देव त्यागौ ॥ ४५

हँस्यो कछू डाढ़ प्रकास कीन्हो ।
 गुहान्धकारै करि दूर दीन्हो ।
 सो फेरि भूतेश्वर दास प्यारौ ।
 पृथ्वीपती सों कहि यों उचारौ ॥ ४६
 तू एक छत्र जगराज छावै ।
 ज्वानी नई बैस-छटा चुचावै ।
 जो नैक काजै बहु ये बिगारै ।
 सूझी कहा तोहि बता गमारै ? ४७
 भूतानुकम्पा यदि तू विचारै ।
 दै प्रान जे एक गऊ उबारै ।
 जीवै पिता तुल्य, घनी बिथा कों ।
 संहारि, राखै पुनि स्वप्रजा कों ॥ ४८
 जो या गऊ को अपराध धारी ।
 डरै गुरू क्रोध कृशानु भारी ।
 अनेक गौ जा घट-ऐन वारी ।
 दै शान्त कीजा रिस तासु सारी ॥ ४९
 प्यारे लगातार अनन्द चाखौ ।
 बलिष्ठ तासों निज देह राखौ ।
 कछू धरा-जीवन-भेद जानौ ।
 न तौ स्वराज्ये पद-शक्र मानो ॥ ५०
 मृगेन्द्र ने ये कहि चुप्प साधी ।
 प्रतिध्वनी तास भई अगाधी ।
 गुफा-शिला पाठ यही उचारै ।
 सप्रीति मानौ नृप कों निवारै ॥ ५१

बारी भरे कातर नैन वारी ।
 वाने गऊ सिंह-घिरी निहारी ।
 दूनो दया-आर्द्रित जास हीयो ।
 ता बात राजा मुनि ज्वाब दीयो ॥ ५२
 निश्चै वही जो क्षति सों बचावै ।
 शब्दार्थ 'क्षत्री' जग में कहावै ।
 का राज सो ता बिपरीत चालै ?
 का लाभ निन्दायुत प्रान पालै ? ॥ ५३
 कैसे बुझाऊँ मुनि क्रोध भारी ।
 दैके गऊ और सु-दूध वारी ।
 साक्षात सुभी तुम याहि मानौ ।
 जो आप थाँमी हर तेज जानौ ॥ ५४
 स्वदेह दै याहि करौ बिमुक्त ।
 मृगेन्द्र ! तो सों यह न्याययुक्त ।
 स्वच्छन्द ह्वै भोजन आप हैगो ।
 मुनि-क्रिया विघ्न न हू परैगो ॥ ५५
 आपौ पराधीन करौ बिचार ।
 सयन्न रक्षौ तुम देवदार ।
 बिहाय रक्षा क्षत दास आई ।
 सकै न स्वामी दिसि म्हाँ दिखाई ॥ ५६
 चाहौ न किम्बा यदि मोहि मारौ ।
 तो दाल ह्वै मो यश-देह धारौ ।
 अवश्य ये पिंड बिनष्ट होवैं ।
 मो से न आस्था इन माँहि जोवैं ॥ ५७

बातें रचैं केवल प्रेम भारो ।
 जासों हि सम्बन्ध जुरथो हमारो ।
 मो मित्र तासों बनि शम्भुदास ।
 पूरी करौगे यह मार आस ॥ ५८
 “तथास्तु” बानी हरि ज्यों सुनाई ।
 जमी भुजा ने पुनि शक्ति पाई ।
 निश्शस्त्र राजामिप पिंड वारी ।
 सिंहै समर्पी निज देह सारी ॥ ५९
 तबै उरै साहस भूप धारी ।
 सोच्यो, भरे सिंह छलांग भारी ।
 ओंधो गिरयो ज्यों नृप तास आगे ।
 प्रसून वर्षा सुर कर्न लागे ॥ ६०
 “बेटा उठौ” अमृत रूप बानी ।
 सुनी, उठ्यो भूपति आप ज्ञानी ।
 क्षीर श्रवन्ती गड मात पेखी ।
 आगैं ठड़ी सिंह न सूर्ति देखी ॥ ६१
 बिस्मित नृपै धेनु गिरा उचारी ।
 माया तबै जाँचन मैं पसारी ।
 ऋषी बलै को सक मोहि मारे ।
 न काल, व्याघ्रादि कहा बिचारे ॥ ६२
 तू द्याल मोपै गुरुभक्तिपागौ ।
 प्रसन्न तो सों, बर पुत्र माँगौ ।
 न गाय हों केवल दूध वारी ।
 मोकों गिनौ कामदुहा सुखारी ॥ ६३

दुखी दबे दीनहिं दान रूप ।
 स्वबाहुयोद्धा कर जोर भूप ।
 स्वबंस कर्त्ता जस रंग-राँचौ ।
 सुदक्षिणा के सुत एक याँचौ ॥ ६४
 भूपाल इच्छा सुत-प्रेम-सानी ।
 तथा करी स्वीकृत धेनु मानी ।
 दोना दुहौ मो पय पुत्र पीयौ ।
 दया भरौ तास निदेस दीयौ ॥ ६५
 बच्छाऽरु यज्ञोपरि जो बिसेस ।
 ता दूध कों पाय ऋषी निदेस ।
 चाहौँ तऊ माय इतेक पीयो ।
 मनौ रखी भूमि षडांस लीयो ॥ ६६
 ज्योंहीं सुनी ऐसि महीप बानी ।
 दूनी गऊ तास सनेह सानी ।
 कढ़ी गुफा सों तिहि संग धाई ।
 बिना थकी आश्रम ओर आई ॥ ६७
 गुरु हि जो गाय-प्रसाद लीनौ ।
 हँसी-हँसी भूप निवेद दीनौ ।
 ता हर्ष चिन्है सबरो बखानौ ।
 कह्यो प्रिया सों दुहराय मानौ ॥ ६८
 जबै सुआदेस बशिष्ठ पायो ।
 बच्छाऽरु यज्ञोपरि जो बचायो ।
 समूर्ति मानौ यश शुभ्र भायो ।
 सो नन्दिनी-दूध दलीप पायो ॥ ६९

दिलीप कथा

पूर्वोक्त प्रातर्व्रत पूर्ण कीन्हौ ।
चल्यो जबै आशिरवाद दीन्हौ ।
राजा स-रानी निज राजधानी ।
बिदा करयो हर्ष बशिष्ठ मानी ॥ ७०
बशिष्ठ-सखीक सवत्स गाय ।
हुताश के हू ढिंग भूप जाय ।
परिक्रमा कीन्ह सहर्ष हीय ।
साफल्यता युक्त स्वगौन कीय ॥ ७१
सधर्मपत्नी निर्विघ्न रूप ।
मनोरथै पा रथ बैठि भूप ।
ध्वनी लगै कानन जासु प्यारी ।
रह्यो-सुखी मारग जात सारी ॥ ७२
न देखिबे साँ उतकंठ भारी ।
प्रजा-व्रती दूबर अंग धारी ।
सीरी करी आँखि नृपै विशेषी ।
नवीन चन्द्रोदय भाँति देखी ॥ ७३
प्रजा रच्यो स्वागत भूप लीन्हौ ।
ध्वजा उड़ै, नग्न प्रवेश कीन्हौ ।
सर्पेन्द्र तुल्य भुज पै सँवारयो ।
पुनः धरा भार धरेन्द्र धारया ॥ ७४
जस नयन निकारयो अत्रि द्यौ तेज, भारी ।
अरु सुरसरि शम्भू अग्नि वीर्य सँवारौ ॥
मह दुरवह तेजै लोक राजानि वारौ ।
तस नृप कुल काजै रानि ने गर्भ धारौ ॥

रघु-चरित्र

निज पितु सों लहि राज अधिक रघु मुदित महा मन मोहै ।
 रवि उजास जिमि पाइ हुतासन सांभ समै अति सोहै ॥
 नृप दिर्लाप पाछे ताको मुनि राजतिलक तत्काल ।
 पहली धुँधकत ज्वाल भाल भड़की नृप उरनि कराल ॥ १
 शत धृति धवल ध्वजा सम ताकें नव वैभव को देखी ।
 प्रजा सप्रजा मुदित आँखि निज सीरी करीं विशेषी ॥
 एक सङ्ग ता गजगामी ने दोउ दावे स्वच्छन्द ।
 पूर्वज राजसिंघासन भुजबल निज बैरिन को बृन्द ॥ २
 श्रीपति रानी गुप्त रूप सों तिहि भूपतिमनि जानी ।
 छाया अनुमित पद्म छत्र छहरायो सिर रुचि मानी ॥
 समय समय बन्दीगन ढिंग मनमुदित सरसुती आन ।
 पढ़ि पढ़ि बिमल भाव जुत प्रस्तुति करयो तास सनमान ॥ ३
 नृप मानी मनु आदि यदपि सो भोगी हिय हुलसाई ।
 परि अनन्य पतिका सम अचला ताही में रति पाई ।
 यथा उचित दे दण्ड प्रजामन हरयो भूप कमनीय ।
 जिमि ना शीतल ना ताती अति मलय पौन रमनीय ॥ ४
 घटी प्रजा रति नृप दलीप में लखि ता गुन अधिकाई ।
 फलत आम जिमि मधुर मञ्जरी मंजुल जाति भुलाई ॥
 नीति निपुन जन जब नव नृपहि सुभायो धर्म अधर्म ।
 द्वितीय पक्ष तजि चतुर सिरोमनि समभि गह्यो तब धर्म ॥ ५
 पञ्चभूत निज पुष्ट गुणनि सों अतिशय लही बड़ाई ।
 रघु के राज समय सब वस्तुनि नित नवीनता पाई ॥

यथा चन्द्र हर्षावन सों अरु तपन धारि परताप ।
 प्रजा मनोरंजन सो राजा तथा लस्यो वह आप ॥ ६
 कर्ण प्रान्त पर्यन्त विस्तरित ताके नैन विशाला ।
 नेत्रवान परिकर्म प्रदर्शक शास्त्रन सों महिपाला ॥
 कमल लक्षणा अमल अपर जनु राजलक्ष्मी आय ।
 थिरताजुत निधरक नृप चित को दयो सरद सरसाय ॥ ७
 निरस परे पतरे अति बादर मारग तजि छितराये ।
 इक सँग ता कर रवि प्रताप जुग दस दिसानि में छाये ।
 घट्यो इन्द्र जब बरपा धनु रघु जय-धनु लियो उठाय ।
 पारी पारी प्रजा अर्थ हित निज निज लेत चढ़ाय ॥ ८
 कमल छत्र अरु कुसुमित कास चमर धरि ऋतु सुघराई ।
 रघु की होड़ करी, परि शोभा ताकी तबहुँ न पाई ॥
 नृप-प्रसन्न आनन चमकत अरु चारु चमत्कृत चन्द ।
 दोउनि निरखि नेत्र धारिनि जन लह्यो सरस आनन्द ॥ ९
 राजहंस श्रेणिनि तारनि कुमुदिनि सुठि सरनि सुहाई ।
 जहँ देखहु तहँ कीर्ति कौमुदी जल थल सकल समाई ॥
 ईख छाँह तर बैठि धान-रखबारिनि तिहि गुन गान ।
 बालापन लों के यशपूरित गावति मुदित महान ॥ १०
 परम प्रशस्त अगस्त उदय सों बिमल भयो अति पानी ।
 रघु उदयत, उर तिरस्कार-मय-शङ्का रिपुदल मानी ॥
 बढ़ी टाटिवारे बृष करि करि ता बिक्रम-अनुहारि ।
 मदभरि डोंकत सींगनि सों सरितट खोदत खुर तारि ॥ ११
 मद गन्धी सापरनि पुहुप सो अपुहि तिरस्कृत धारी ।
 जनु गज करि तारी सरसावत सप्त अंग मद-वारी ॥

पाँझ सरित करनी हरनी मग-करदम शरद सुभाय ।
 तिहि उछाह प्रथमहिं जात्रा हित करी प्रेरना आय ॥ १२
 हय पूजन बिधि मधि सद् बिधि सों उदित हुतासन आई ।
 जनु तिहि दक्षिण लौ मिस करलै जय-माला पहराई ॥
 तज्यो न रिपु, तउ मन्दर गढ़ दढ़ रक्षा-जतन कराइ ।
 बड़बिधि सैन सहित दिग जय हित चलयो सुभग रघुराई ॥ १३
 नगर बड़ी बूढ़ी ता पै खीलन-बरषा बरसावैं ।
 मथत उदधि जनु छहरि लहरि हरि तन जल-कन सों छावैं ॥
 गयो पुरन्दर सम पूरब सो प्रथमहि ज्ञान निकेत ।
 मनहु पवन फहरात ध्वजन सों रिपुनि ताड़ना देत ॥ १४
 भयो अकास अवनि सम अरु भई अवनि अकास समाना ।
 रथ रज उड़ति धमकि धुरवा सम धावत गजदल नाना ॥
 आगे तेज शब्द ता पाछै तदनन्तर फिरि धूरि ।
 आछे पुनि रथ आ क्रम चाली चतुरङ्गिनी सपूरि ॥ १५
 निज बल सकल अजल थल जलमय सघन बिपन तरु हीना ।
 तरनिन तरन जोग नदियन कों पाँझ नृपति करि दीन्हा ॥
 लस्यो सैन लै जात पूर्व सागर नय नागर धीर ।
 जनु हर जटिल जटा भव सुरसरि सँग भागीरथ बीर ॥ १६
 सररर रव करि भोजपत्र मधि बाँसन सन धुनि कारी ।
 सुरसरि सीकर सहित पवन मग में तिन सेवा धारी ॥
 छाँह देख केसर की में बहुतक सेनक बलधाम ।
 बैठत-मृग मृगमदवासित सिल विरमि कियो बिसराम ॥ १७
 दलि अरि दलबल, करि तिन साहस दरप बिफल रघुराई ।
 कुञ्जर इव नृप-तरुन तोरि निज मग निरबिघन बनाई ॥
 या बिधि पूरब जीति असेसनि देसनि वह रनबीर ॥
 पहुँच्यो ताल-मालरँग - रञ्जित श्याम समुन्दर तीर ॥ १८

(अपूर्ण)

मुद्राराक्षस

प्रथम अङ्क के कुछ पद्यों का अनुवाद

को यह अति बड़भागिनि, जिहि तुम सिर पै धारत ।
 सुभग शशिकला, का या को यहि नाम उचारत ॥
 यही नाम फिरि जान बूझि तुम क्यों विसरायौ ।
 नारी कों मैं पूँछि रही तुम इन्दु बतायौ ॥
 तो पूछि लेउ बिजयाहि सों, यदि शशि को साँचु न धरै ।
 इमि गंग छिपावत उमहि सों, शिव कौ छल रक्षा करै ॥१॥

होहु भले ही बुवन में, मूरख महा किसानु ।
 किन्तु बई सत छेत्र में, खेती बढ़ति महानु ॥
 सघन होत बल पकरि जो, काउ धान को बृच्छ ।
 बीज बुवैया को न गुन, खेती गुन प्रत्यच्छ ॥३॥
 कोउ मसाले कों बटत, कोउ जल भरत पवित्र ।
 प्रफुलित कोउ प्रसून की, माला गुहत विचित्र ॥
 जब जब ओखलि पै गिरत, मूसल तिह तिह बार ।
 पाछें पाछें सुन परत, सुखद शब्द हुँकार ॥४॥

आवौ बेगि पियारी, अरी हाँ—

सब उपाय में चतुर गुनवती काज सँवारन हारी ॥
 साधति अर्थ धर्म अरु कामहि, नित गृहस्थ सुखकारी ।
 घर की रीति नीति सब जानति, सोचति बात अगारा ॥५॥
 नीच केतु अरु क्रर ग्रह, इनको गठित समाज ।
 चारु चमत्कृत चन्द्रमा, पूर्ण मण्डलहिं आज ॥

बल सों चाहत प्रसन ये, कैसी बात अजोग ।
किन्तु ताहि रच्छत सदा, सब प्रकार बुध योग ॥६॥

यह सोई कौटिल्य विलाकहु, कुटिल बुद्धि सों छायौ ।
कोप अनल में, नन्द बंस जिन, हठ करि तुरत जरायौ ॥
चन्द्र ग्रहन के कहत, चन्द्र को नाम सुनत भरमायौ ।
चन्द्रगुप्त को शत्रु प्रसित गिनि, आतुर इत ही आयौ ॥७॥

जो द्विरद-शोणित-स्वाद चाख्यो, धरत शोभ ललाम ।
अरु अरुन-सन्ध्या-शशिकला सम पूज्य पूरन काम ॥
जमुहाइवे मुख फटत ज्यों, प्रगटत स्वतेज प्रगाढ़ ।
अपमान करि, को चाहत काढ़न, सिंह की यह दाढ़ ॥८॥

कोपानलकारी सघन, धूमलता अनुरूप ।
निधन नन्द कुल को करन, काल नागिनी रूप ॥
छूटी अस मेरी शिखा, अजहुँ न बाँधन देत ।
को ऐसो पापी भयो, बधन जांग हत चेत ॥९॥

गहन नन्दकुल-वन-दहन, धूमकेतु विकराल ।
अस मम कोप-प्रताप की अति प्रचण्ड जो ज्वाल ॥
ताहि निदरि या ही समय, किं कर्त्तव्य अजान ।
अपुही ते जरिबौ चाहत, कौन पतिंग समान ॥१०॥

दिशि के सम शत्रु-तिया मुख चन्द ते,
कालिमा शोक धुआँ की लगाइ ।
द्रुम-मंत्रिनु पै, निज नीति के पौन सों,
मोह की छार अपार बिछाइ ।

द्विज-नग्न-निवासी तज्यों अस नन्द के,
 बंस के अंकुर सारे नसाइ।
 नहिं खेद सों, किन्तु न पाइ कछू,
 ये गई मम क्रोध की आँच सिराइ ॥११॥

मुँह के मुँह “धिक” शब्द रह्यो, नृप-भय जिन शीश नवायो।
 आसन लखि मोहि उठ्यो विवश, जिन जिय में सोच समायो ॥
 ते देखें मैं सकुल गिरायो, नन्दहिं आसनु ऐसे।
 मत्त गयन्दहिं सिंह गिरावै, शैल सिखिर सों जैसे ॥१२॥

नऊ नन्द कों भुवि-हृदय-शल्य समान शीघ्र उखारि।
 सर-कमलिनी सम मौर्य में नित-राजलक्ष्मी धारि।
 रिपु मित्र में निज सुदृढ़ चित सों उचित न्याय दिखाय।
 सम बाँटि कोपऽहू प्राति कौ फल दियो दोउनि चखाय ॥१३॥

प्रभु की प्रभुता लखि लोग सदा,
 निज स्वारथ लागि करें सिक्काई।
 बिपता में सहायक होइ बही,
 जिहके मन आस अगार की छाई।
 प्रभु के परलोक गये जो रहैं,
 उपकार विचारि के, लोभ बिहाई।
 हैं बिरले तुम सारिखे सेवक,
 स्वामि सनेह रहैं मनलाई ॥१४॥

कायर बुद्धि-बिहीन भक्ति-युत कौन काम कौ।
 बुधि-विक्रम-संपन्न भक्ति-बिन नहिं छदाम कौ।

जिन गुन संयुत उचित भक्ति प्रज्ञा औ विक्रम ।
ते सुख दुख में स्वामिभक्त बस और त्रिया सम ॥१५॥

जिह मन्त्री रहे बलवान सुजान,
सुकीर्तिलता जिन छाई बिसेखी ।
तिह जीयत नन्द सबंस के जो,
थिर नाहिं भई चलती अवरखी ।
वह चंचला चारु अचंचल है,
नृप चन्दरगुप्त के अंक सुलेखी ।
बस दूर सकै करि को अब ताहि,
कहूँ छुटी चन्द सों चाँदनी देखी ॥२२॥

कछु जाइ मिले रिपु सों पहले,
नहिं जानि परै, केहि भाव सों प्रेरी ।
अब जे कछु शेष रहे, चले जाउ,
रतीक नहीं परवा तिन केरी ।
जिनु नन्द कौ बंस समूल नस्यो,
शत सेनहु सों जिह शक्ति घनेरो ।
सब काज की साधन हारि वही,
इक बुद्धि रहै इक साथिन मेरी ॥२५॥

एकाकी स्वच्छन्द समुज्ज्वल जासु दान की धारा ।
अभिमानि मद प्रबल सदा जो मन की करत अपारा ।
बाँधि बुद्धि-गुन वृषल-हाथ सों बस तिहि लावौ ऐसे ।
श्रवत दान-जल मद उच्छृङ्खल बली वन्य गज जैसे ॥२६॥

ईनोक आरडिन

अंग्रेजी साहित्य में उक्त नाम की छोटी-सी काव्यात्मक पुस्तिका परम प्रसिद्ध है। इसकी मधुर एवं सरल रचना से बड़े-बड़े सहृदय विद्वान् भी मुग्ध होते हैं। इसका प्रकृति-सौन्दर्य, मानवी स्वभाव का मनोहारी वर्णन तथा परमात्मा का प्रगाढ़ प्रेम अत्यानन्द का देने वाला है।

प्रारम्भ करते ही समुद्र तट के पर्वतीय दृश्य का चित्र इस भाँति खींचा गया है—

लम्बी शैल-श्रेणि खंडित जहाँ घाटी सोहत ।
समुद्र फैल अरु पीत बालुकन तहाँ मन मोहत ॥
दरसत सकरो घाट सत्र्यो बहु सदन सुहावन ।
तासों चलि कछु परें जीर्न गिरिजागृह पावन ॥
पनचक्की दिसि जान तहाँ ऊपर पथ भ्राजत ।
परे कछुक नभ ओर धवल टीलो पुनि राजत ॥
तहाँ देनिस समसान सघन सुन्दर हरियल बन ।
नरियल बीनन सदाँ सरद में जहाँ आवत जन ॥
नीचे से में लहलहात धरि छटा अथोरी ।
ललित हरित रँगभरी धरी जनु कलित कटोरी ॥

समुद्र के किनारे रेत से घर बनाते हुए बच्चों का कैसा अच्छा स्वाभाविक वर्णन है—

रचत रेत-मय मंजु मन्दरनि मोद मनावत ।
उदधि उतंग तरंग उठत जब, तिनहिं बहावत ॥

भजत तामु पाछें, जब आवत धावत आगें ।

लघु पद-चिन्हनि धुअन नित्य सों तट पर त्यागें ॥

निराशा घनघोर घटा में आशा की प्यारी प्रभा किस प्रकार
प्रकाश करती है, उसका भी रहस्य सुनिये—

यदपि अचानक आइ छाई कुदिशा मँडरानी ।

सुदिन लखन की आस तामु हिय तउ न सिरानी ॥

जिमि कोऊ जन जाय निकट तट लखत समुन्दर ।

तरल तोय रवि किरन परसि चिलकत अति सुन्दर ॥

धिरत बदरिया होत कछुक उज्जल जल तम मय ।

नसत नाहिं परि दूर जास-परकास-भास-चय ॥

परदेश जाता हुआ पाति ईनोक अपनी अर्धाङ्गी 'एनी' को
उपदेश दे रहा है और वह चुपचाप किंकर्तव्यविमूढ़ हो खड़ी है,
उसका तत्कालीन चित्र देखिये—

जिमि कोउ जाइ तड़ागं बुड़ावति गागरि गोरी ।

मन लागी नित भरन हार रसिया सों डोरी ॥

मुख लों सो भरिजात बहत जल बबलत ता धुनि ।

प्रिय सनेह बस पर तिय सुनत न सकल सबद सुनि ॥

पूर्व देशीय प्राकृतिक छटा का कैसा विशद वर्णन है—

हरी घास सों धिरे तुंग टीले नभ चुम्बत ।

तिनमें सूधी सरल सरग दिसि डगर उलंबत ॥

नव नरियल साखन की टुक सीसों भुक भमकनि ।

कीट पखेरुन की दामिनि ज्यों दमकनि रमकनि ॥

ईनोक आरडिन

लिपटनि ललित लतनि की द्रुमसों परम सुहावनि ।
बढ़ि बढ़ि लहरत सुभग समुद्र के तल लों आवनि ॥

एक जगह इस कविता का नायक ईनोक ईश्वर की प्रार्थना करते-करते तन्मय हो गया है । उसकी भी चासनी चखिये—

करन प्रार्थना लग्यो हृदय भरि प्रेम रसायन ।
द्वैतभाव तजि जहाँ मिलत नित नर-नारायन ॥

प्रार्थना का लाभ भी सुनि लीजिये—

यदपि रह्यो अति दुखी तबहु सो उर नहिं हारो ।
तासु अचलप्रण दियो ताहि अति सुभग सहारो ॥
तदुपरि दृढ़ विश्वास, ईश-गुन-गान प्रतापा ।
हृदय पटल सों उमगि उमगि, नित आपुहि आपा ।
समुद्र उपर गत रुचिर, मधुर जल स्नात समाना ।
जगत विपति मधि रख्यो, ताहि तउ प्रफुलित प्राणा ॥

धन्य कविरत्न टेनीसन ! धन्य तुम्हारा कविता कलाप !!
ईनोक आरडिन की कुछ अन्य पंक्तियों का भी अनुवाद यहाँ दिया जाता है—

भये बरस सत यहाँ समुद्र तट निकट जु दरसत ।
त्रिय वंशज त्रियवाल परस्पर आनंद परसत ॥
पिकबैनी मृगशावकनैनी मिलि सुख दैनी ।
नगर बिमोहनि मृदु रस ऐनी मञ्जुल 'एनी' ॥
अपर "फिलिप रे" पनचक्की-पति-सुवन-अकेलो ।
सुन्दर सरल सुभाउ सरस हिय अति अलबेलो ॥

अरु गमार केवट सुत अबिचल अक्षतार्जन ।
जो अनाथ अति सीत काल में पोत नसन सन ॥

(१० वीं पंक्ति से १५ वीं पंक्ति तक)

कबहुँ कबहुँ परि सात दिना लों बनि अधिकारी ।
कहत तऊ ईनोक उलटि निज आँख निकारी ॥
“यह मेरो घर अरु यह मेरी नवला नारी” ।
“मेरी हू” कह फिलिप “लेहु बँट निज-निज बारी” ॥
जब अनबन में बनत प्रबल तहँ ईनोक अधिपति ।
नील नयन भरि नीर रोष बस फिलिप निबल अति ॥
उठत कबहुँ चिल्लाय “चिढ़त अति ईनोक तुमसों” ।
तबै सरल करुणामयि बाला बिनबति उनसों ॥
“मो पाछैं जनि भगरो करहुँ निहारे भार” ।
थोरी - थोरी बनहुँ दोउन की प्राण पियारी” ॥
परि ज्योंही भोरी शिशुता की झलक सिरानी ।
उदय अतन तन भयो चिलकि जागी तिन ज्वानी ॥
वा तरुणी के प्रेम पगे त्योंही दोऊ जन ।
ईनोक ने खुलि कही सकल हिय बात मुदित मन ॥

(२६ पंक्ति से ४० वीं तक)

ईनोक ने हिय करयो सुदृढ़ संकल्प सुहावन ।
जहँ तक निज बस चलै कमाई नित्य बचावन ॥
मोल लैन इक सुघर नाव अरु घरहिं बनावन ।
मञ्जुल ता में मन भावन 'एनी' कों लावन ॥

(४४ वीं पंक्ति से ४८ वीं तक)

भोगि घने दिन कठिन रोग की साँसति नाना ।

प्राण पखेरू तजि तन पिञ्जर कियो पयाना ॥

(२६८-२६९)

तहाँ फिलिप छिन ठहरि, हहरि इमि गिरा उचारी ।

“एनी आयो इतै आज तव दया भिखारी ॥”

(२८३-२८४)

वही चुकावै अबसि अबसि लागति तब सारी ।

धन चाहें चुकि सकत दया नहिं चुके तिहारी ॥

(३१९-३२०)

नर आनन नहिं कहूँ तहाँ अँखियन को दरसत ।

मन मिलताऊ प्रेम भरी बतियन को तरसत ।

(५७७-५७८)

इक दिन ता कानन में ताके कानन आई ।

धीमी - धीमी हरख भरी परि दूर पठाई ॥

निज गिरिजा गृह बिजय-घण्ट धुनि परी सुनाई ।

उछरि भयो मूर्छित ताकों सुनि सो घबराई ॥

कल्लुक काल गो बीत जबै चित चेत जगायो ।

परम ललित परि घृणित द्वीप मधि निज तन पायो ॥

लग्यो न होतो तास प्रेम मय जो षटपद-मन ।

जन प्रतिपालक प्रति थल व्यापक प्रभुपद पदमन ॥

तो अकेल नित रहन, जनित भय सागर माँही ।

मरि जातो सो अबसि तहाँ कल्लु संशय नाहीं ॥

(६०९-६१०)

ईनोक तहँ नहि एक शब्द काहू सों भाखत ।
पर घर कों, घर ? का घर ! का वह घर हू राखत ?

(६६३-६६४)

पिछवारे की ओर दूरि सों परम सुहाई ।
टिमटिमाति इक जोति रुचिर तहँ परी दिखाई ॥
मरन काज सो भयो ताहि लखि मन में मोहित ।
जिमि निज पथ सों भटकि पखेरू कोउ हारयोचित ॥
निरखि प्रकाश प्रकाश-थम्भ को ललित ललामा ।
धरत लालसा हृदय करन की तहँ बिसरामा ॥
जौं लगि जानत नाहिं अभागो अपन मूढ़पन ।
तजै न तौं लगि तहाँ हाय टकराय श्रमित तन ॥

(७२२-७२६)

होरेशस

(लार्ड मैकाले कृत)

जबै भुक्ति हेमन्त-राति कारी कजरारी,
 अरु उत्तर की सीरी-सीरी, चलति बियारी,
 बरफीले ठौरनु सों करकस कठोर आई
 उठि लिरियन को रुदन देर लों परत सुनाई,
 जबै इकौसी परी भोंपरी के चहुँ ओरी,
 सनसनाति आंधी आंजर पांजर भकभोरी
 जरति पहारिनु-लट्टुनिकी धुनि चटचटानि अति
 सुनत देत ना कछू सोर सों श्रोनहि फोरति,
 जबै महोच्छव औसर पै करिवे मिहमानी,
 काढ़त पीपहिं खोलि नसीली सुरा पुरानी,
 धरत उजेरे काज बड़ो सो लम्प उजारी,
 करति भूँजि अखरोट विविधि भोजन तय्यारी,
 जबै घेरि अगिहाने कों मिलि सबरे बैठत,
 बूढ़नु सों बतरात ज्वान निज मोंछ उमेठत
 बुनत बोइया और टुकनियाँ जबै कुमारीं,
 युवक बनावत धनुहीं जीय चुरावनहारी,
 जबै कान्त कोउ क्रीट कलंगी कवच सुधारै
 कुल कामिनि कातत रहँटा प्रमोद उर धारे;
 प्रमुदित अरु प्रेमाश्रु बहावत अति रुचि मानी,
 सुनत सुनावत सकल अजहुँ यह वीर कहानी,

सत्य धीर होरेशस जिहि विधि बल दरसाई,
लियो विमल प्राचीन समय में सेतु रखाई,

श्रम अरु निज कर्तव्य धार मुद मंगलदेनी,
जबै भारती नेह मिलत, तब बहति त्रिवेनी,
जामें जब कोउ जानि करति मज्जन अरु पाना,
होत अभ्युदय तासु कहत इतिहास पुराना
प्रजा राज-प्रिय राज प्रजा-प्रिय निरमल राजै
शत्रु नसत अपुमों अपु सुखमय शान्ति विराजे
स्वर्गादपि गरीयसी अनुपम प्राण पियारी
मन्द मन्द मुसकात चन्द मुख करि उजियारी
मंजु माधुरी मूर्ति सदय उर नित सर्वानी
देति दरस सत स्वतन्त्रता जग जननि भवानी
उक्त सुमज्जन पान अवसि सज्जन जन कीजै
जग दुरलभ अनमोल मनुज जीवन फल लीजै



परिचय

कविरत्न पं० सत्यनारायण शर्मा सनाढ्य ब्राह्मण थे। अलीगढ़ (कोयल) के दुबेजी के खान्दान के थे। उनका जन्म २४ फरवरी सन् १८८० मिति माघ शुक्ल १३ सोमवार संवत् १९३६ को रात के दो बजे के लगभग सराय नामक ग्राम में हुआ था। उनकी मौसी सरदारकुंवरि ने उन्हें पाला पोसा। वे जारखी कोटला आदि स्थानों में रईसों के घराने में पढ़ाती थीं। धाँधूपुर (आगरा) निवासी बाबा रघुवरदास की चेली होने के कारण शिशु सत्यनारायण को बाबाजी को सौंप दिया था। बाबाजी के स्थान पर रह कर बालक सत्यनारायण ने विद्योपार्जन किया और क्रमशः वर्नाकुलर तथा अँग्रेजी मंदिरों में बी० ए० कक्षा तक तालीम पाई। ब्रजभाषा की कविता बड़ी ही सरस सुन्दर करते थे—स्वभाव बड़ा ही सरल था। भवभूति कृत उत्तर रामचरित्र नाटक और मालती माधव नाटक का गद्य-पद्यमय सुन्दर अनुवाद कर गये हैं जो कई बार प्रकाशित हो चुके हैं। अँगरेजी काव्यों के भी सुन्दर अनुवाद किये थे जो प्राप्त हैं। स्फुट कविताओं का संग्रह “हृदय तरंग” के नाम से प्रकाशित हुआ था जिसका अब यह द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो रहा है।

ता० १५ अप्रैल सन् १९१८ को रात्रि समय धाँधूपुर में ही मृत्यु हुई। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी लिखित इनकी जीवनी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने प्रकाशित की है जिससे विस्तृत जीवन वृत्तान्त का पता चलता है।

शब्दार्थ

शब्दार्थ

असि = तलवार, ऐसे
 अघ = पाप
 अननौ = परिपूर्ण
 अनल = आग
 अनिल = हवा
 अभिमत = मनचाहा
 अलि, अली = भौरा
 अतन = कामदेव
 अधवर = बीच में
 अंबु = जल
 अरविन्द = कमल
 अचक = धीरे से
 आवरन = चादर
 आजनेय = हनुमानजी
 आखर = अन्तर
 आनन = मुख
 आयत = चौड़ा
 इन्द्रवधूटी = वीरबहुट्टी
 उत्तंग = ऊँचा
 उर्वरा = उपजाऊ
 उपल = पत्थर
 उनई = उठी
 उडुगन = तारे
 उसीर = स्त्रस
 उत्पल = कमल

आंध = समूह
 कुसुमाकर = तालाब
 करकस = कठोर
 करवाल = तलवार
 कर = हाथ, किरन
 किशलय = कोपल
 कीर = ताता
 कलकंठ = कोयल
 करमायल = काला हिरन
 कलापी = मोर
 कुमुद = कमल
 कमलिनी = कमल
 कुमुदिनी = रात का कमल
 कुंजर = हाथी
 कलिन्दी, कालिन्दी = जमना
 कूल = किनारा
 ग्रथित = गुंथे हुए
 गयन्द = हाथी
 गरब = अभिमान
 गोपनीय = छुपा हुआ
 गुहावन = पिरोने वाला
 गरियारन = गर्ली
 गगन = आकाश, धूल
 गामन = गाना, ग्राम

गंगाधर = शिव
 घनसार = कपूर
 चरी = चारा
 छद्म = कपट
 छैनी = नाशक
 छिति = भूमि
 छैया = छाया
 छाहरी = अलहड़ लड़की
 छपाकर = चन्द्रमा
 जीवन = जल, जान
 जातरूप = सान्ध
 जीरन = पुराना
 जरठाई = बुढ़ापा
 जेवन = जवानो, देखना
 जल जात = कमल
 जंबु = जामुन
 ज्योत्स्ना = चाँदनी
 भुराय = भुरी पड़ी हुई
 भांक = गर्म हवा
 टेव = आदत
 टपका = छत चुचाना, आम
 डगर = पगडंडी
 तूमा पलटी = लौट पलट
 तामरस = कमल
 तुसानल = भुसी की धुंधकती
 आग

तरनि = सूर्य
 तरनि तनूजा = जमुना
 तड़ित = बिजली
 दारुयोपित = कठपुतली वाला
 द्रुत = जल्दी
 दीपति = चमकीला
 दुकाल = बुरा समय
 दुकूल = वस्त्र
 दावानल = जंगल की आग
 दीसि = दिखाई
 द्विज = पक्षी, ब्राह्मण
 द्विजराज = चन्द्रमा
 दिनेश = सूर्य
 धूमरि = धुमैले रंग की गाय
 धाराधर = बादल
 धावन = दूत, दौड़ना
 धोरी = सफेद गाय
 निस्प्रभ = प्रभाहीन
 निकेत = घर
 निकाई = नीकापन, अच्छाई
 निधि = समुद्र, खजाना
 न्यार = चारा
 नन्दन वन = इन्द्र का बाग
 नलिन = कमल
 नीड़ = घोंसला
 पायक = दूत

शब्दार्थ

प्रथित = प्रसिद्ध
 पासान, पाषाण = पत्थर
 प्रमत्त = नशे में
 पद्म = कमल
 प्रक्षालत = पखारे हुए
 पोत = जहाज
 प्रसून = फूल
 परनत = बदलता है
 पोखर = ताल
 पिक = कोयल
 पंचशर = कामदेव
 पुलिन = रेती
 परिमल = फूलों की धूल, सुगन्ध
 पादप = पेड़
 पाटल = गुलाब
 परोदय = दूसरों की उन्नति
 षयोधर = बादल, स्तन
 पुरन्दर = इन्द्र
 पजरना = जलना
 पैनी = नोकदार डंडा
 पंकरुह = कमल
 प्रभाकर = सूर्य
 प्रहास = जोर से हँसना
 पंक = कीचड़
 पटल = परदा

पलायन = भागना
 फगुवारन = होली खेलने वाले
 फनी = साँप
 वरही = मोर
 बारन = हाथी
 बेला = घड़ी
 बौर = बावले, बौर आए हुए
 बड़वानल = पानी की आग
 बिसैलो = जहरी साँप
 बसनाभिराम = वस्त्रों से शोभित
 व्यार, घयार = हवा
 वारिद = बादल
 वारिज = कमल
 बेगरी = छितरी हुई
 भुजंग = सर्प
 भारती = सरस्वती
 भुवि = भूमि
 भोइ = धोखे में पकड़ कर
 मिलिन्द = भौरा
 महीधर = पहाड़
 मठा धुंवारे = घर घाले
 मगन = प्रसन्न, रास्ते
 मराल = हंस
 मधुप = भौरा
 मूरि, मूर = जड़

मित्र = सूर्य
 महारि = कृपा
 मदन = कामदेव
 मार = कामदेव
 मुकुलित = फूले हुए
 मयूख = किरन
 मीर = अफसर
 रसा = भूमि
 रसनिधि = समुद्र
 रतनाकर = समुद्र
 रसना = जीभ
 रसाल = रमदार, आम
 रूख = पेड़
 रंक = कंगाल
 रंच = जरा भी
 लांगूल = पूँछ
 लौनी = नमकीन, सुन्दर
 विद्युत = बिजली
 विश्रुत = विख्यात
 वैजयन्ती = माला
 व्यतिक्रम = उलटा
 वाचाल = बक्की
 विराम = ठहरने का स्थान
 विकृत = बिगड़ा रूप
 वासर = दिन
 विमाता = सौतेली माँ

वज्री = इन्द्र
 शस्य = खेती
 श्रुति = कान, वेद
 श्री = लक्ष्मी, शोभा
 शालि = धान
 शशांक = चन्द्रमा
 षटपद = भौरा
 सोकर = बूंद
 सतत = सदा
 सौख्य = सुख
 संकुलित = इकट्ठा
 सुवरन = सोना, अच्छा रंग
 सत्वर = शीघ्र
 सिराना = ठंडा पड़ना, नाश होना
 सोपान = सीढ़ी
 सरोरुह = कमल
 सघन = बादल की भाँति, गहरा
 सुरलि = सुरीली
 सिदौसो = जल्दी
 सीरक = ठंडक
 सामी, समुहे = सामने
 सलिल = जल
 सुधाकर = चन्द्रमा
 हीतल = हृदय
 हतआसी = निराश
 दांति = क्षमा, वदार्शत

द्वितीय खण्ड

अन्यक्त = छुपा हुआ ।

अनुदात्त = तुच्छ, नीच ।

अछदम = बे कपट ।

अछुद्र = बड़ा ।

अमेय = बेहद ।

अरज्यो = प्राप्त किया ।

अलान = हाथी बाँधने की जंजीर ।

इजार = पाजामा ।

इकौसी = एकान्त में ।

उदात्त = उदार, श्रेष्ठ ।

उरग = सर्प ।

उजास = प्रकाश ।

उजरे = उजाला ।

कालकूट = जहर ।

कीरतिजा = राधिका जी ।

केकी = मोर ।

गिरीन्द्रजा = पारवती ।

गारत = नष्ट ।

घांघरो = लहँगा ।

घाल = डाल ।

चौल = हँसी, मजाक ।

चिबुक = ठोड़ी ।

चुखाय = दूध पिलाकर ।

चुचाति = टपकती ।

चिलकत = चमकता है ।

छार = राख ।

जवनिका = पर्दा ।

जड़मति = मूर्ख ।

भख = मछली ।

भाँभरी = जर्जर ।

ठौर = जगह ।

टुकनिया = डलिया ।

थरप्यो = चढ़ाया ।

दयार्द्र = दया से पिघला हुआ ।

दुरवह = जो कठिनता से सहा जाय ।

धीरे = सफेद ।

धीपर = दुपहर ।

धीरूपे = बुद्धि स्वरूप (सरस्वती)

धूसरी = मैली ।

धरा = जमीन ।

नांखें = लांघें ।

नेती = डोरी ।

निचय = समूह ।

निपूतौ = निपुत्र ।

नीठ = कठिनता से ।

पिछौरी = चादर ।

पुरन्दर = इन्द्र ।

प्रगल्भ = चतुर, होशियार ।

पन्नग = सर्प ।

प्रतिचा = धनुष की डोरी ।

प्राचीर = शहरपनाह ।
 पादप = पेड़ ।
 पारण = व्रत खोलना ।
 प्रशस्त = सुंदर ।
 पोत = जहाज ।
 पौरसुता = पुर की कन्याएँ ।
 वार = देर ।
 बदरिया = बादल (छोटा)
 बसी = बस में करने वाला ।
 वारबधू = वेश्या ।
 बेगाना = गैर ।
 बकन = बगुले ।
 विरवन = पौधे ।
 बासव = इन्द्र ।
 बिड़ारि = हटा कर ।
 बई = बोई गई ।
 बोइया = छोटी डलिया ।
 बगदि = लौट कर ।
 भैन = बहिन ।
 भानुसता = जमुना
 मुदाम = सदा ।
 मठारना = मज्जाक उड़ाना ।
 मदीय = मेरा ।

मधुकर = भौरा ।
 मूसे = चूहे ।
 मजूम = भाँग की मिठाई ।
 मृगमद = कस्तूरी ।
 मिथुन = जोड़ी ।
 याची = भिखारी ।
 रावरो = आपका ।
 रन्ध्र = सूराख ।
 लीलि को टीकौ = कलंक ।
 लिरिया = भेड़िया ।
 वारि = पानी ।
 वाद्य = बाजा ।
 वह्नि = आग ।
 विवृत = बिगड़ा, फटा हुआ ।
 वेनु = बाँसुरी ।
 वरुणालय = समुद्र
 वसा = चरबी ।
 सुधांशु = चंद्रमा ।
 सहिष्णु = सहनशील ।
 सुरभी = गऊ ।
 सप्रूरि = पूर्ण ।
 सर्पेन्द्र = शेष ।
 हुताश = आग ।
 हली = बलराम ।

